PREFACE

The *Kiratarjuniya* is one of the six Mahakavyas 'great poems' or 'excellent compositions in Sanskrit' as Colebrooke calls them, translations of the first three of which, namely the *Raghuransha*, the *Kumar Sambhava*, and the *Meghduta* are included in my *Hindi Kalidasa* published thirty-four years ago. It was also then proposed to publish translations of the other three and the *Kiratarjuniya* both in time and importance claims the first place. Only half the book, however, could be translated and is now submitted to the judgment of the public.

" The author Bharavi, who was a contemporary or a successor of Kalidasa is by a long way inferior to him in all the qualities which make a true and a great poet. But nevertheless Bharavi boasts of a thought and a language, a spirit and lofty eloquence of expression which Kalidasa seldom equals. Only one Mahakavya has been left to us and it is one of the most spirited of poems in the Sanskrit language.

" The story is taken from the Mahabharata. Yudhisthira is in exile. His spirited wife urges him to break the treaty with his cousins and to win back the kingdom. Yudhisthira's spirited brother Bhima supports Draupadi but he is not to be moved from his plighted word. In the meantime Vyasa comes and advises Arjun to seek by penance the celestial

जाना-अर्जुन के चलने की तयारी-अर्जुन के भावी वियोग में पांडवों का दुःख-अर्जुन से द्रौपदी की बातचीत-व्यास के कहने से यक्ष के साथ अर्जुन का इन्द्रकील पर्वत पर जाना।

चौथा सर्ग—शरदऋतु का वर्णन।

पाँचवाँ सर्ग—हिमालय की शोभा। अर्जुन का हिमालय के तट पर पहुँचना-यक्ष का चला जाना।

छठा सर्ग—इन्द्रकील पर्वत पर अर्जुन का चढ़ना-अर्जुन की तपस्या का वर्णन-इन्द्रकीलवन के रक्षकों का इन्द्र के पास जाकर अर्जुन की कड़ी तपस्या का वर्णन करना—अर्जुन की तपस्या भंग करने के लिये इन्द्र का अप्सराओं को आज्ञा देना।

सातवाँ सर्ग—अप्सराओं का गन्धर्वों के साथ प्रस्थान—इन्द्रकील पर्वत पर पहुँच कर उनके रथ घोड़े समेत उनके डेरे का वर्णन।

आठवाँ सर्ग—गन्धर्वों और अप्सराओं के फूल चुनने की क्रीड़ा और जलक्रीड़ा का वर्णन।

नवाँ सर्ग—सायंकाल और चन्द्रोदय का वर्णन-मद्पान वर्णन, प्रातः काल का वर्णन।

दसवाँ सर्ग-अर्जुन को फुसलाने के लिये उनके पास अप्सराओं का आना-वर्षाऋतु का वर्णन-अर्जुन को देख कर अप्सराओं के हाव भाव, कटाक्ष और उनका निष्फल होना।

ग्यारहवाँ सर्ग—अर्जुन के आश्रम में मुनि के रूप में इन्द्र का आना-इन्द्र और अर्जुन की बात चीत-इन्द्र का प्रकट होकर अर्जुन को उपदेश देना कि तुम शिव जी का आराधन करो।

बारहवाँ सर्ग—शिवजी के आराधन के लिये अर्जुन की तपस्या का वर्णन-अर्जुन की तपस्या से घबरा कर सिद्ध तपस्वियों का शिवजी के पास जाना और शिवजी का उनको धीरज देना-मूक दानव का

वाराह रूप धर कर अर्जुन के सामने निकलना-और उसी समय किरातरूप धर कर शिव जी का वहाँ पहुँचना।

तेरहवाँ सर्ग—वाराहरूपधारी मूक दानव को अर्जुन की देखना और तर्क वितर्क करना-अर्जुन और शिवजी का साथ ही साथ उसको मारने के लिये तीर चलाना-वाराह का मरना-वाराह के शरीर से अपना बाण निकालते समय शिव जी के भेजे हुये एक वनवासी को बातचीत।

चौदहवाँ सर्ग—अर्जुन का उत्तर-वनवासी से अर्जुन का उत्तर सुनकर शिव जी का सेना समेत अर्जुन पर चढ़ दौड़ना-शिव जी की सेना के साथ अर्जुन का युद्ध।

पन्द्रहवाँ सर्ग—चित्रकाव्य में युद्ध का वर्णन।

सोलहवाँ सर्ग—किरातरूपी शिव जी का कौशल देखकर अर्जुन का वितर्क-शिव जी के साथ अर्जुन का अस्त्र युद्ध।

सत्रहवाँ सर्ग—अर्जुन का शिव जी की सेना के साथ युद्ध—अर्जुन और शिव जी का युद्ध।

अठारहवाँ सर्ग—शिव जी और अर्जुन का बाहुयुद्ध—अर्जुन का बल देखकर शिवजी का प्रसन्न होकर दर्शन देना—उसी समय इन्द्र आदि देवताओं का वहाँ आ जाना—अर्जुन का शिवजी की स्तुति करना और वर मांगना-शिवजी का अर्जुन को पाशुपत-अस्त्र देना और धनुर्वेद सिखाना—इन्द्रादि देवताओं का शिवजी की आज्ञा से अर्जुन को वरदान देना और अपने अपने अस्त्र देना—शिवजी की आज्ञा से कृतकृत्य होकर अर्जुन का युधिष्ठिर के पास जाना।

यह कथा महाभारत वनपर्व के अंतर्गत अर्जुनप्रस्थानपर्व और किरातपर्व से ली गई है। कहीं कहीं संक्षिप्त है और कहीं महाकवि ने उसको अपने कौशल से रँग दिया है। एक बात विशेष यह है कि

arms with which he will be able to conquer his foes in the hour of battle. Arjun takes leave of his brothers and of Draupadi and retires into the solitude of the Himalaya Mountains to perform his penance. Here Indra sends celestial nymphs to lure him from his austere rights. The hero is, however, unshaken. Indra appears in disguise and after a vain attempt to dissuade him from his penance advises him to win the celestial arms by the worship of Siva.

" Once more Arjun engages in penance and after sometime Siva approaches him in the form of a Kirata or wild hunter. A wild boar attacks Arjun and is slain. Both Arjun and Kirata claim the merit of having slain the animal and thus a quarrel is picked up which leads to a fight at the end of which Siva reveals himself, blesses the saintly warrior and bestows on him the coveted arms by which he is to win back his kingdom and his fame."

Regarding the age of Bharavi, the earliest known authentic reference is in an inscription dated 556 Saka or 638 A. D. in which he is spoken of as being a renowned poet. Nothing more has yet been ascertained about him.

SITARAM

ALLAHABAD

8th January 1906

भूमिका

चालीस बरस हुये हमने संस्कृत के षड्काव्यों का भाषा छन्दों में अनुवाद करने का संकल्प किया। पहिले कालिदास के काव्यों से श्रीगणेश किया और १८८३ ई० में मेघदूत का अनुवाद प्रकाशित किया गया, १८८४ में कुमारसम्भव के सात सर्ग छपे, १८८५ में श्रीसीतारामचरितामृत के नाम से रघुवंश के छः सर्ग (१०-१५ तक), १८८६ में रघुचरित के नाम से रघुवंश के ६ सर्ग (२-६ तक) और १८९१ में सम्पूर्ण रघुवंश भाषा छन्दों में छापा गया। उसी समय किरातार्जुनीय और माघ में भी हाथ लगाया गया था परन्तु प्राचीन-नाटकमणिमाला के छः नाटकों को भी छपाना था इसलिये १९०१ में किरातार्जुनीय के पांच सर्गों का अनुवाद सरस्वती में निकला और माघ दस ही सर्ग लिखकर रोक दिया गया। अब न इनके पूरा करने का समय है न बल है न श्रद्धा है। इससे जो कुछ प्रस्तुत है वही पाठकों को भेंट किया जाता है। किरातार्जुनीय काव्य में १८ सर्ग हैं जिनका ब्योरा यों है।

पहिला सर्ग—युधिष्ठिर ने एक बनबासी को दुर्योधन का राज्य-प्रबन्ध जानने के लिये हस्तिनापुर भेजा था वह आकर दुर्योधन के शासन की प्रशंसा करके चला जाता है। इसके पीछे द्रौपदी युधिष्ठिर को समझाती है कि वैरी से लड़ना चाहिये।

दूसरा सर्ग—युधिष्ठिर को भीमसेन का समझाना-युधिष्ठिर का उनको उत्तर देना-इसके पीछे उन लोगों के पास व्यास जी का आना और पांडवों का उनका सत्कार करना।

तीसरा सर्ग—व्यास जी का स्वरूप वर्णन-युधिष्ठिर और व्यास-जी की बातचीत-व्यास का अर्जुन को सिखाना-मुनि का चला

जाना-अर्जुन के चलने की तयारी-अर्जुन के भावी वियोग में पांडवों का दु:ख-अर्जुन से द्रौपदी की बातचीत-व्यास के कहने से यक्ष के साथ अर्जुन का इन्द्रकील पर्वत पर जाना।

चौथा सर्ग—शरदऋतु का वर्णन।

पाँचवाँ सर्ग—हिमालय की शोभा। अर्जुन का हिमालय के तट पर पहुँचना-यक्ष का चला जाना।

छठा सर्ग—इन्द्रकील पर्वत पर अर्जुन का चढ़ना-अर्जुन की तपस्या का वर्णन-इन्द्रकीलवन के रक्षकों का इन्द्र के पास जाकर अर्जुन की कड़ी तपस्या का वर्णन करना—अर्जुन की तपस्या भंग करने के लिये इन्द्र का अप्सराओं को आज्ञा देना।

सातवाँ सर्ग—अप्सराओं का गन्धर्वों के साथ प्रस्थान—इन्द्रकील पर्वत पर पहुँच कर उनके रथ घोड़े समेत उनके डेरे का वर्णन।

आठवाँ सर्ग—गन्धर्वों और अप्सराओं के फूल चुनने की क्रीड़ा और जलक्रीड़ा का वर्णन।

नवाँ सर्ग—सायंकाल और चन्द्रोदय का वर्णन-मद्यपान वर्णन, प्रातः काल का वर्णन।

दसवाँ सर्ग - अर्जुन को फुसलाने के लिये उनके पास अप्सराओं का जाना-वर्षाऋतु का वर्णन-अर्जुन को देख कर अप्सराओं के हाव भाव, कटाक्ष और उनका निष्फल होना।

ग्यारहवाँ सर्ग—अर्जुन के आश्रम में मुनि के रूप में इन्द्र का आना-इन्द्र और अर्जुन की बात चीत-इन्द्र का प्रकट होकर अर्जुन को उपदेश देना कि तुम शिव जी का आराधन करो।

बारहवाँ सर्ग—शिवजी के आराधन के लिये अर्जुन की तपस्या का वर्णन-अर्जुन की तपस्या से घबरा कर सिद्ध तपस्वियों का शिवजी के पास जाना और शिवजी का उनको धीरज देना-मुक दानव का

बाराह रूप धर कर अर्जुन के सामने निकलना-और उसी समय किरातरूप धर कर शिव जी का वहीं पहुँचना।

तेरहवाँ सर्ग—बाराहरूपधारी मूक दानव को अर्जुन को देखना और तर्क वितर्क करना-अर्जुन और शिवजी का साथ ही साथ उसको मारने के लिये तीर चलाना-बाराह का मरना-बाराह के शरीर से अपना बाण निकालते समय शिव जी के भेजे हुये एक वनवासी की बातचीत।

चौदहवाँ सर्ग—अर्जुन का उत्तर-वनवासी से अर्जुन का उत्तर सुनकर शिव जी का सेना समेत अर्जुन पर चढ़ दौड़ना-शिव जी की सेना के साथ अर्जुन का युद्ध।

पन्द्रहवाँ सर्ग—चित्रकाव्य में युद्ध का वर्णन।

सोलहवाँ सर्ग—किरातरूपी शिव जी का कौशल देखकर अर्जुन का वितर्क-शिव जी के साथ अर्जुन का अस्त्र युद्ध।

सत्रहवाँ सर्ग—अर्जुन का शिव जी की सेना के साथ युद्ध—अर्जुन और शिव जी का युद्ध।

अठारहवाँ सर्ग—शिव जी और अर्जुन का बाहुयुद्ध—अर्जुन का बल देखकर शिवजी का प्रसन्न होकर दर्शन देना—उसी समय इन्द्र आदि देवताओं का वहीं आ जाना—अर्जुन का शिवजी की स्तुति करना और वर माँगना—शिवजी का अर्जुन को पाशुपत-अस्त्र देना और धनुर्वेद सिखाना—इन्द्रादि देवताओं का शिवजी की आज्ञा से अर्जुन को वरदान देना और अपने अपने अस्त्र देना—शिवजी की आज्ञा से कृतकृत्य होकर अर्जुन का युधिष्ठिर के पास जाना।

यह कथा महाभारत वनपर्व के अंतर्गत अर्जुनप्रस्थानपर्व और किरातपर्व से ली गई है। कहीं कहीं संक्षिप्त है और कहीं महाकवि ने उसको अपने कौशल से रँग दिया है। एक बात विशेष यह है कि

जाना-अर्जुन के चलने की तयारी-अर्जुन के भावी वियोग में पांडवों का दुःख-अर्जुन से द्रौपदी की बातचीत-व्यास के कहने से यक्ष के साथ अर्जुन का इन्द्रकील पर्वत पर जाना।

चौथा सर्ग—शरदृऋतु का वर्णन।

पाँचवाँ सर्ग—हिमालय की शोभा। अर्जुन का हिमालय के तट पर पहुँचना-यक्ष का चला जाना।

छठा सर्ग—इन्द्रकील पर्वत पर अर्जुन का चढ़ना-अर्जुन की तपस्या का वर्णन-इन्द्रकीलवन के रक्षकों का इन्द्र के पास जाकर अर्जुन की कड़ी तपस्या का वर्णन करना—अर्जुन की तपस्या भंग करने के लिये इन्द्र का अप्सराओं को आज्ञा देना।

सातवाँ सर्ग—अप्सराओं का गन्धर्वों के साथ प्रस्थान—इन्द्रकील पर्वत पर पहुँच कर उनके रथ घोड़े समेत उनके डेरे का वर्णन।

आठवाँ सर्ग—गन्धर्वों और अप्सराओं के फूल चुनने की क्रीड़ा और जलक्रीड़ा का वर्णन।

नवाँ सर्ग—सायंकाल और चन्द्रोदय का वर्णन-मद्पान वर्णन, प्रातः काल का वर्णन।

दसवाँ सर्ग -अर्जुन को फुसलाने के लिये उनके पास अप्सराओं का जाना-वर्षाऋतु का वर्णन-अर्जुन को देख कर अप्सराओं के हाव भाव, कटाक्ष और उनका निष्फल होना।

ग्यारहवाँ सर्ग --अर्जुन के आश्रम में मुनि के रूप में इन्द्र का आना-इन्द्र और अर्जुन की बात चीत-इन्द्र का प्रकट होकर अर्जुन को उपदेश देना कि तुम शिव जी का आराधन करो।

बारहवाँ सर्ग—शिवजी के आराधन के लिये अर्जुन की तपस्या का वर्णन-अर्जुन की तपस्या से घबरा कर सिद्ध तपस्वियों का शिवजी के पास जाना और शिवजी का उनको धीरज देना-मूक दानव का

बाराह रूप धर कर अर्जुन के सामने निकलना-और उसी समय किरातरूप धर कर शिव जी का वहीं पहुँचना।

तेरहवाँ सर्ग—बाराहरूपधारी मूक दानव को अर्जुन को देखना और तर्क वितर्क करना-अर्जुन और शिवजी का साथ ही साथ उसको मारने के लिये तीर चलाना-बाराह का मरना-बाराह के शरीर से अपना बाण निकालते समय शिव जी के भेजे हुये एक वनवासी की बातचीत।

चौदहवाँ सर्ग—अर्जुन का उत्तर-वनवासी से अर्जुन का उत्तर सुनकर शिव जी का सेना समेत अर्जुन पर चढ़ दौड़ना-शिव जी की सेना के साथ अर्जुन का युद्ध।

पन्द्रहवाँ सर्ग—चित्रकाव्य में युद्ध का वर्णन।

सोलहवाँ सर्ग—किरातरूपी शिव जी का कौशल देखकर अर्जुन का वितर्क-शिव जी के साथ अर्जुन का अस्त्र युद्ध।

सत्रहवाँ सर्ग—अर्जुन का शिव जी की सेना के साथ युद्ध—अर्जुन और शिव जी का युद्ध।

अठारहवाँ सर्ग—शिव जी और अर्जुन का बाहुयुद्ध—अर्जुन का बल देखकर शिवजी का प्रसन्न होकर दर्शन देना—उसी समय इन्द्र आदि देवताओं का वहीं आ जाना—अर्जुन का शिवजी की स्तुति करना और वर माँगना-शिवजी का अर्जुन को पाशुपत-अस्त्र देना और धनुर्वेद सिखाना—इन्द्रादि देवताओं का शिवजी की आज्ञा से अर्जुन को वरदान देना और अपने अपने अस्त्र देना—शिवजी की आज्ञा से कृतकृत्य होकर अर्जुन का युधिष्ठिर के पास जाना।

यह कथा महाभारत वनपर्व के अंतर्गत अर्जुनप्रस्थानपर्व और किरातपर्व से ली गई है। कहीं कहीं संक्षिप्त है और कहीं महाकवि ने उसको अपने कौशल से रँग दिया है। एक बात विशेष यह है कि

भारवि के समय में और उनके पीछे चित्रकाव्य लिखने की परिपाटी चल गई थी। किसी किसी प्रकार के चित्रकाव्य की रचना संस्कृत ही में सम्भव है जैसे,

"न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु।
नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनो नानेनानुन्ननुन्ननुत् ॥"

इसका सीधा साधा अर्थ यह है

"हे नाना प्रकार के मुखवालो, जिसको कोई निकृष्ट विद्ध करे वह पुरुष नहीं है और जो निकृष्ट से विद्ध हो जाय वह भी पुरुष नहीं है। निकृष्ट से डर कर भागनेवाले को क्या कहैं"। इसका भाषानुवाद करना व्यर्थ है। यह केवल महाकवि के शब्दशास्त्र पर पूरे अधिकार का नमूना है। हिन्दी भाषा के कवि भी ऐसे काव्य लिखने का कभी कभी उद्योग करते हैं। हमारे मित्र स्वर्गवासी लाला त्रिलोकीनाथसिंह भुवनेश का एक छन्द है।

सासै ससी ससै ससिसीसै।
सासै सेसै सासि सु सीसै ॥

महाकवि भारवि कब हुये और अपने जन्म से किस देश को बड़ाई दी इन बातों का अभी तक निर्णय नहीं हुआ। प्राचीनलेखमाला के एक लेख में किरातार्जुनीय का नाम आया है। यह लेख ५५६ शक का है जिसमें भारवि का नाम है। इससे अनुमान होता है कि भारवि ईसा की सातवीं शताब्दी में वर्त्तमान थे। भारवि माघ से तो कुछ पहिले के हैं और माघ के समय का निर्णय शिशुपालवध के कुछ सर्गों के छन्दोबद्ध अनुवाद की भूमिका में किया गया है।

श्रीअवधवासीसीताराम

प्रयाग।
ज्येष्ठ कृष्ण ११ सं० १९८१ वि०

किरातार्जुनीयभाषा

(पूर्वार्द्ध)

पहिला सर्ग

द्रौपदी और युधिष्ठिर का संवाद

धर्म-धुरीन धर्मसुत राजा।
बसत द्वैतबन सहित समाजा॥
कुरुपति-वृद्धि सदा उर सालत।
सो केहि भाँति प्रजा निज पालत॥
यह जानन हित दूत बुलावा।
भेद लेन तेहि नगर पठावा॥
विप्र-रूप धारे बनवासी।
गयो जहाँ सोई पुर सुखरासी॥
जानि मर्म सब बन महँ आई।
बैठ्यो नृप ढिग सीस झुकाई॥
बुधिबल सकल राज रिपु जीता।
किये प्रबन्ध प्रजामनचीता॥
कहत ताहि यह बचन कठोरा।
नहिं सकोच मन तिन मुख मोरा॥
सदा स्वामि-हित जे मन राखत।
झूठी ठकुरसुहाति न भाषत॥
चेतत निज रिपुनास उपाऊ।
आज्ञा ताहि दीन्ह नरराऊ॥

बोल्यो चतुर दूत अति धीरा।
बचन बिशेष उदार गँभीरा॥
"दूतन सकल मर्म नृप जानत।
"दूतन जन नृपनयन बखानत॥
"करै जु दास दूत कर कर्मा।
"तेहि कर नाथ परम यह धर्मा॥
"सांची बात कठोरहु भाषहि।
"धोखे माँहिँ न स्वामिहि राखहि॥
"यहि सन क्षमब नाथ सब सोई।
"साधु असाधु कहब मैं जोई॥
"हित की रहै मधुररस सानी।
"ऐसी नाथ सुलभ नहिँ बानी॥
"वृथा सखा जिन अवसर पाई।
"नहि स्वामिहि सुचि चाल सिखाई॥
"सो कि स्वामि जो नीति सिखावत।
"हित-उपदेश चित्त नहिँ लावत॥
"नृप औ सचिव मिले जहँ अहहीं।
"तहाँ सकल सुख सम्पति रहहीं॥
"कहँ नृप चरित कठिन दुर्गम अति।
"कहँ हम जन्तु समान मूढ़मति॥
"यह सब, नाथ, प्रभाव तुम्हारा।
"जो समुझौं रिपुनय-व्यवहारा॥
"तुम बन रहहु राज रिपु करई।
"तुम्हरे गुनन सदा सो डरई॥
"जीत्यो प्रथम जुआ सन जाही।
"जीतन चहत नीति सन ताही॥

" अब सो कुटिल तुमहि जीतन हित ।
" करत विमल जस हेत जतन नित ॥
" काम आदि निज रिपु सब जीती ।
" करत काज सब जस नृपनीती ॥
" जो पदवी मनु प्रथम बखानी ।
" ताहि लहन-इच्छा मन आनी ॥
" अति श्रम सन सोइ आलस त्यागी ।
" करत जतन नित जग हित लागी ॥
" प्रेमी भृत्य मित्र सम जानत ।
" मित्रन सदा बन्धु सम मानत ॥
" सदा शत्रु तव गर्व विहाये ।
" रहत बन्धु निज स्वामि बनाये ॥
" सेवत यथा-योग सब सङ्गा ।
' धरे सबन हित प्रीति असङ्गा ॥
' तेहि महँ धर्म अर्थ अरु कामा ।
' रहैं न एक एक सन बामा ॥
' गुन अनुराग भूप महँ पाई ।
" रहत मित्र सम बैर बिहाई ॥
' दान समेत साम अनुसरई ।
" बिन सम्मान दान नहि करई ॥
" बिन देखे विशेष गुन कोई ।
' नहि सम्मान करत पुनि सोई ॥
" लोभ छाँड़ि निज क्रोध निवारी ।
' एक केवल निज धर्म विचारी ॥
' शत्रु होइ कै पुत्रहि होई ।
' धर्म-विरुद्ध करै जो कोई ॥

" जेहि विधि गुरू देत उपदेसा ।
" उचित दण्ड तेहि देत नरेसा ॥
" शत्रु सदा शङ्का चित धारे ।
" बन्धु मित्र कीन्हे रखवारे ॥
" रहत सुचित पुनि कारज देखी ।
" निज सेवक आदरत बिसेखी ॥
" दान मान सो तेहि सन पावत ।
" है कृतज्ञ दृढ़ भक्ति जनावत ॥
" जेहि नृप कछु अनुशासन दीन्हा ।
" सो समुझत प्रभु आदर कीन्हा ॥
" करत सदा यहि विधि नरराऊ ।
" काज सिद्धि हित उचित उपाऊ ॥
" सुधरैं तासु काज सब कैसे ।
" बढ़ै अर्थ संग सम्पति जैसे ॥
" रथ तुरङ्ग योधा रखवारे ।
" रहैं खड़े नित राजदुआरे ।
" झूमत गज मदस्रवत अथोरा ।
" छिन महँ मचत कीच चहुँओरा ।
" थोड़े ही श्रम चतुर किसाना
" पावत समय समय धन धाना ।
" सोहत देश नदी के तीरा
" पाय भूप दुर्योधन वीरा ॥
" दयावान जस विमल प्रकासे
" रक्षा करत विघ्न सब नासे ।
" धनपति सम नृप के गुन देखी
" आप देत धन धरनि विसेखी ।

" ज्यों सप्रेम जल सींचन पावत।
" दूध गाय थन आगरत आवत॥
" महातेज मानी बहु बीरा।
" लहे समर महँ जस रनधीरा॥
" भिन्न भिन्न सब तजे विरोधा।
" धन बेतन पावत सब योधा॥
" सब यहि विधि निज भक्ति निबाहत।
" प्राणहु त्यागि तासु हित चाहत॥
" राखे चर सुशील बहुतेरे।
" लहत भेद सब भूपन केरे॥
" विधिप्रपंच सम फल जब जानत।
" ताकी चाल लोग अनुमानत॥
" कबहुँ न कीन्ह धनुष-टंकारा।
" मुख न कोप सन कबहुँ बिगारा॥
" गुन अनुराग हेत सब राजा।
" देस देस सामन्तसमाजा॥
" ताके अनुशासन अनुसरहीं।
" माल सरिस अज्ञा सिर धरहीं॥
" करि यहि विधि जग महँ दृढ़ शासन।
" निज युवराज कीन्ह दुःशासन॥
" चतुर पुरोहित सँग यहि काला।
" करत यज्ञ नित सो महिपाला॥
" सकल देस के भूप दबाये।
" राज सिन्धुतट लगि फैलाये॥
" रहै तुम्हार त्रास नित ओही।
" सुचित न रहै बली कर द्रोही॥

" सुरपति सुत सम तेज अभंगा ।
" सुनत कबहुँ तब कथा प्रसंगा ॥
" सब होत नाये निज सीसा ।
" प्रबल मंत्र-बस मनहुँ फनीसा ॥
" तुमहि कलन सोइ चह फिर स्वामी ।
" अब तब शत्रु कुमारगगामी ॥
" अब बिलम्ब केहि कारन करहू ।
" कपट-प्रबंध माँहि चित धरहू ॥
" सुनी सो नाथ कान महँ डारी ।
" इतनी हो करतूति हमारी ॥"
कहि यहि भाँति पाय सतकारा ।
बनवासी निज भवन सिधारा ॥
कृष्णा-गेह आय नर-देवा ।
भाइन सौंह कह्यो सब भेवा ॥
सुनि रिपु-सिधि पंचालकुमारी ।
चित्त-क्षोभ नहि सको संभारी ॥
नरपति-तेज सिथिल अति जानी ।
बोली कुपित करन हित बानी ॥
" तुम सरीख कहँ नाथ सुजाना ।
" होत नारि-सिख गारि समाना ॥
" पै यहि कुन मरजाद नसावत ।
" चित्त-दुःख करि ढीठ बुलावत ॥
" सुरपति सरिस तेज बल धारे ।
" भूमिपाल कुल माहिं तुम्हारे ॥
" धरी जु धरनि सदा निज हाथा ।
" ताहि, हाय, मद-बस तुम नाथा ॥

'रुई फोंकि ज्यों सिर पर धारत।
'गज मदअन्ध माल महि डारत॥
'छलिन संग जो छल नहिं करहीं।
'ते नर अवसि दुःख महँ परहीं॥
'हनै चतुर रिपु तिन कहँ कैसे।
'तन बिन कवच पैन शर जैसे॥
'अनुरागी सब किये सहायक।
'कुलअभिमानयुक्त नरनायक॥
'तुम तजि सकै और को त्यागी।
'निज कुलप्रिय निज गुन अनुरागी?
'तुम मदवस तेहि लाज बिहाई।
'कुलहिन सी रिपु सन हरवाई॥
'तुम नरदेव सुपदअधिकारी।
'हीन दीन भइ दशा तुम्हारी॥
'दहै न क्यों तोहि कोप विशाला।
'सूखे शमीतरुहि जिमि ज्वाला॥
'कोप अमोघ विभव रह जाके।
'रहैं सकल प्राणी वस ताके॥
"तेज अमर्ष जासु तन नाहीं।
'चहैं न मित्र न शत्रु डेराहीं॥
"लसत विशाल देह महँ चन्दन।
"जो बिचरयो चहुँ दिसि चढ़ि स्यन्दन॥
"लसत धूरि सो पैदल धावत।
"क्यों न भीम तव धीर छुड़ावत?
"हरि सम जिन उत्तरकुरु जीती।
"हेम-राशि तोहि दीन्ह सप्रीती॥

"धरत छाल सोइ अर्जुन वीरा
"लखि केहि भांति धरौ जिय धीरा ?
"महि सोवत नहिँ केश संवारे।
"बन-गज सम कठोर तन धारे ॥
"इन जोड़ियन की दृशा बिलोकी।
"तुम निज कोप सकौ किमि रोकी ?
"जानि न परत मोहिं कछु तव मति।
"अहै विचित्र मनुजचित की गति॥
"मैं पुनि अब तव दृशा विचारत।
"शोक प्रचंड चित्त मम जारत॥
"मागध बन्दि सुजस नित गावत।
"तुमहि सेज सन रहे उठावत॥
"कुश-जामी महि पर अब सोवत।
"जागत भोर स्यार सुनि रोवत॥
"द्विजन जेंवाइ करत भोजन नित।
"देखि देखि हुलस्यो जेहि हितचित॥
"बनफल खात आजु छविहीना।
"भई देह तव जस सम छीना॥
"मनि के पीठ रँग्यो जेहि छिन छिन।
"सीसफूल-रज सन नृप निस दिन॥
"सो तव चरन कुशन पर परहीं।
"जिन के पात हरिन नित चरहीं॥
"कीन्ही रिपुन दृशा यह घोरा।
"व्याकुल होत सोचि चित मोरा॥
"विक्रम तेज बचे निज जानत।
"अभिमानी हारेउ सुख मानत॥

" अब यह ढील तजहु नरराऊ।
" करहु बेगि रिपुबधन-उपाऊ॥
" शम सन रिपु मारत मुनिलोगा।
" शम नहिं कबहुँ नृपन के जोगा॥
" तेजस्विन महँ परम प्रधाना।
" जिन निज सुजस परम धन माना॥
" हेठी दशा शत्रु सन पाई।
" जो तुम सम जन रहैं छुपाई॥
" तो न मान कर रह्यो ठिकाना।
" करहि कौन निज कुल-अभिमाना॥
" बिक्रम तजि तुम्हार जो टेका।
" क्षमा करन सुख-साधन एका॥
" नृप-लच्छण तो धनुशर त्यागी।
" जटाबांधि सेइय मख-आगी॥
" तब रिपु छल सन नासन चाहत।
" तुम केहि कारन अवधि निबाहत?
" विजय चहत नृप अवसर पाई।
" सन्धिहु तोरत दोष लगाई॥
" विधि बाम बस कै काल बस
परि शत्रुमय-अंधियार में।
" निज तेज सकल नसाय बूड़े
विपति-सिन्धु अपार में।
" अब फेरि तुम पहँ राजश्रिय
लखि तेजयुत ढिग आवई।
" निस बितत निर्मल जोति निज
ज्यों उवत सूरज पावई॥

॥ इति॥

दूसरा सर्ग

भीम और युधिष्ठिर का संवाद

कह्यो प्रिया जो वचन गंभीरा
ताहि विचारि वृकोदर वीरा।
युक्ति सहित उदार-रस-सानी
कही भूप सन तेहि छन बानी।
" क्षत्रिय-कुल-अभिमान दिखावत
" ज्ञान नेह संग प्रगट जनावत
" कहे वचन जो द्रुपद-कुमारी
" भयो सुनत मन विस्मय भारी।
" जो प्रसिद्ध सुरगुरु जग माहीं
" ऐसे वचन कहैं सो नाहीं
" कैसिहु विषम नीति कोउ होई
" होत सुगम उपाय सन सोई
" ज्यों तलाव तट विषम करारा
" उतरहिं सब घाटन के द्वारा
" विषम चाल समुझत बहुतेरे
" कहनहार जग मिलैं न हेरे ;
" ज्यों जल-थाह अमित जन पावत
" पै बिरला कोउ घाट बनावत
" लहै दुःख सुनि जे तन-क्षामा
" पै सुख सो पैहैं परिणामा
" दूबर तन ज्यों कड़ी दवाई
" हरै दुःख कुछु रोग बढ़ाई

'तुम गुणज्ञ यह हित की बानी ।
, सुनि समुझिय जनि अनुचित मानी ॥
'गुनग्राहक जन गुन हिय धारत ।
'कहौ कौन यह नाहिँ बिचारत ॥
'अयी आदि विद्या जग चारी ।
'तिन महँ गति मति लही तुम्हारी ॥
'परी पंक करिनी सम होई ।
"भई शिथिल केहि कारण सोई ?
'यहि ते अधिक दुःख को आना ।
'जो तव बल देवन नित माना ॥
'रिपु सन दीन दशा यह पाई ।
'बैठे तुम सोइ तेज नसाई ॥
'जो समुझत निज रिपु-चतुराई ।
'जो चाहत निज भूति-भलाई ॥
'रिपु की वृद्धि मौन गहि लेखहिं ।
'तासु विनास निकट जब देखहिं ॥
'फल-सिधि होत नास लखि परई ।
"सो लखि चतुर धीर नहीं धरई ॥
'रिपु-क्षय-युक्ति निकट अति जानी ।
'पुनि निज दूर क्षुद्र अति मानी ॥
"रहैं मौन गहि पुरुष सुजाना ।
'न तर करैं प्रतिकार-विधाना ॥
"मष्ट मारि जो नृप हिय हारी ।
'बढ़त शत्रु की शक्ति निहारी ॥
'त्यागि देत तेहि श्रिय घबराई ।
'अनुचित संग कलंक डेराई ॥

" हीन दीन यद्यपि नृप अहई ।
" जाके सहज तेज तन रहई ॥
" दूज चन्द सम तेहि सब मानी ।
" नवैं तासु अविचल पद जानी ॥
" नीति पाञ्च अंगन की संगा ।
" सहित कोष सेना चतुरंगा ॥
" रहै सकल उत्साह-अधारा ।
" रहै दैव सब ज्यों संसारा ॥
" जो निज कुल-अभिमान निबाहत ।
" ऊँचे पद जब पावन चाहत ॥
" तिनकी बिपति-निवाहनहारा ।
" पौरुष निज एक होत सहारा ॥
" बिन पौरुष आपति घिरि आवत ।
" आपति आगम सकल नसावत ॥
" बिन आगम गौरव सब खोई ।
" प्रिय भाजन रहि सकै न कोई ॥
" आलस उन्नति-बाधक जानहु ।
" तजहु ताहि बिनती प्रभु मानहु ॥
" यतन कीन्ह सो ऋधि सिधि पावा ।
" को विषाद करि लाभ उठावा ॥
" जो पुनि यह समझहु मन माहीं ।
" अबहीं उचित करब कछु नाहीं ॥
" तौ कै तुमहिं नाथ परतीती ।
" रही कुटिल जाकी नित नीती ॥
" इतने दिवस राजरस लेई ।
" सकिहै सहज फेरि रिपु देई ॥

" जो यह धर्म सुयोधन कीन्हा।
" फेरि राज बीते दिन दीन्हा॥
" तो बल पौरुष तेज अपारा।
" तव भाइन सब व्यर्थहि धारा॥
" स्रवत-दान-मद गज संहारी।
" रहै मुदित मृगपति बलधारी॥
" निज समान औरहि नहिं जानहिं।
" जग-लघु-करन धर्म निज मानहिं॥
" तेजस्विन कर सहज सुभाऊ।
" करैं भूति हित इहै उपाऊ॥
" जिनके धन निज कुल-अभिमाना।
" तिन तन भंगुर, जस थिर माना॥
" बिज्जु समान जानि श्रिय चंचल।
' गनत नाहिं सो ताहि मुख्य फल॥
' जरत आगि कोउ पास न आवत।
' बुझे राख सब रौंदत धावत॥
' परिभव हरि जिनके मन माना।
' तजे न तेज तजै बरु प्राना॥
' गरजत घन तड़पत मृगराजा।
' कूदत नहिँ कछु माँगन काजा॥
' बड़न सुभाव सदा यह होई।
' पर-उन्नति सहि सकैं न सोई॥
' अब यह वृथा मोह प्रभु त्यागी।
' करिय सुमति विक्रम-हित-लागी॥
' बैरी—विपति—विनास—उपाऊ ।
' इक तुम्हार आलस नरराऊ॥

"प्रलयसिन्धु सम अति बलवाना।
"दिग्गज सम जस विदित-जहाना॥
"चढ़ैं समर जब अनुज तुम्हारे।
"रहैं कौन रिपुगन महँ सारे॥
"बैरिन लखि तव चित महँ लागी।
"जरै जो अजहुँ क्रोध की आगी॥
"बुझवैं ताहि बेगि रिपुनारी।
"कठिन शोक बस दृगजल डारी॥
यहि बिधि निज मन कोप जनाई।
रहे प्रभंजन—पुत्र चुपाई॥
किये दुष्ट गज सम लखि क्रोधा।
लगे धर्मसुत करन प्रबोधा॥
"सहित प्रमान सुमङ्गलमूला।
"सुनत हरत मन नय-अनुकूला॥
"दर्पन सरिस कही जो बाता।
"प्रगटत बिमल बुद्धि तव ताता॥
"यद्पि रहे बिशद पद सारे।
"तऊ अर्थगौरव सब धारे॥
"नहिं पुनरुक्ति दोष तिन माहीं।
"पद-सामर्थ्य तजे कोउ नाहीं॥
"तुम अनुमान प्रमाण दिखावा।
"आगम हूँ सब प्रगट जनावा॥
"यहि आश्रय समेत बच ऐसे।
"कोउ ततकाल सकै कहि कैसे?
"भयो न तृप्त तऊ मन मोरा।
"चलत विचारनीति की ओरा॥

" विग्रह सन्धि आदि जे कर्मा।
" जिन महँ जो विसेष सो मर्मा॥
" समुझ न परहि सहज सो भाई।
" कहत लगे सोइ सुगम उपाई॥
" करिय काज जनि बिना विचारे।
" रहै बिपति अबिबेक-सहारे॥
" करै जु काज विचारि बिसेखी।
" सम्पति बरै तिनहिं गुन देखी॥
" अवसर पर सींचत जो धीरा।
" विधि-बीजन बिबेक के नीरा॥
" काज-सिद्ध लहि होहिं विशोका।
" फल-युत शरद पाय जिमि लोका॥
" मनुज-देह कर भूषन ज्ञाना।
" क्षमा ज्ञान-भूषन जग जाना॥
" सोहत क्षमा पराक्रम संगा।
" लहै जो सिधि करि नीति अभंगा॥
" भूषन तासु पराक्रम जानहु।
" चतुर शिष्ट सम्मत यह मानहु॥
" काज माहि जब चतुरन केरे।
" परै बुद्धि सन्देह अँधेरे॥
" आगम ज्ञान काम तब आवत।
" विमल दीप सम अर्थ देखावत॥
" भये जो जग सज्जन गुनवारे।
" तिनके चरित चित्त जो धारे॥
" ते निज पाप दैव बस जानत।
" निज विनास कहँ उन्नति मानत॥

" जीते क्रोध चहै जो जीती।
" सो नरपतिवर की यह रीती॥
" जब पूरन फल सिधि चित धरहीं।
" पौरुष युत उपाय नित करहीं॥
" चहत सिद्धि जो चतुर सुजाना।
" बुधि सन हनै रोष अज्ञाना॥
" जो रवि दिन करि लोक प्रकासत।
" उवत सो प्रथम निसा-तम नासत॥
" जो अज्ञान कोप मन आरत।
" जो बल सन तेहि नाहिं निवारत॥
" तिन निज शक्ति-संपदा नासी।
" कृष्णपक्ष महँ चन्द्रकला सी॥
" नृप श्रिय शरदमेघ सम चञ्चल।
" भागन हेत करत बहु छलबल॥
" चल इन्द्रिय सन लखहु बिचारी।
" नहीं सुगम श्रिय की रखवारी॥
" तुम निज चित धीरता जनाई।
" सरिपति-मन गलानि उपजाई॥
" अब तुम निज मन क्षोभ जनावत।
" कुसमय तेहि अति ऊँच बनावत॥
" आगम निगम ज्ञान जो पाये।
" रहै न देहज शत्रु दबाये॥
" थोरहि दिन निज सम्पत्ति खोवत।
" श्रिय के नाम दोष दै रोवत॥
" साधन समय व्यर्थ करि डारत।
" इन्द्रियदेह कोध सब जारत॥

" तुमहि न जोग क्रोध के सोई।
" साधारन जन सम बस होई॥
" नीतिचाल सन काज बिहाई।
" भटको सुधि बुधि सकल नसाई॥
" आगम माहि करत उपकारा।
" सकल यत्न सिधिसाधनहारा॥
" नसै न आप हनै रिपु नाना।
" क्षमा सरिस साधन नहिँ आना॥
" रहैं नवत हम सब तिन सन नित।
" सो हम सन राखे सनेह चित॥
" अभिमानी जे यदुकुल माहीं।
" नवैं सुयोधन कहँ सो नाहीं॥
" सहज मित्र कै लोग उदासी।
" जिन इन सम मरजाद न नासी॥
" बिनय किये निज दिवस बितावत।
" अन्धपुत्र-सन जीव बचावत॥
" बीते अवधि सुअवसर पाई।
" तुम रिपु पर जब करब चढ़ाई॥
" फुटि हैं सब सामन्त नरेसा।
" खिलत कमल ज्यों उवत दिनेसा॥
" अपमानत मद बस नृपलोगा।
" करिहै तिनहिं भेद के योगा॥
" साधारन न सहै अपमाना।
" सहैं सो क्यों नृप तेजनिधाना॥
" जो कृतज्ञता चित नहिं लावत।
" परे काज कछु बिनय दिखावत॥

"सोये रहैं सो मद अभिमानी ।
"तेहि रोकन कर अवसर जानी ॥
"पै सम्पति बाढ़त तिन केरा ।
"मद दिनहूँ दिन होत घनेरा ॥
"जिनके मन नित मद बस फूले ।
"रहैं सो सदा धर्म निज भूले ॥
"मूढ़ नरेस तजै जब नीती ।
"नृप सन करै प्रजा नहिं प्रीती ॥
"प्रजा-विराग वायु के लागत ।
"राज-मूल दृढ़ता निज त्यागत ॥
"क्षमा किये जो समय निहारहिं ।
"ते सहजहिं नृप-मूल उखारहिं ॥
"गये बिनसि जब मंत्रि समाजा ।
"थोरेहु वैर बचै नहिं राजा ॥
"उपजि डार रगरन सन आगी ।
"भसम करत गिरि चहुँदिसि लागी ॥
"छाड़ि विनय जो रिपु आचरहीं ।
"चतुर न तासु वृद्धि चित धरहीं ॥
"सहजहि सो रिपु सकिय हराई ।
"विनय तजे किन बिपति न पाई ॥
"नीच चाल लखि नृपति चलत नित ।
"फाटत मंत्रि स्वजन सब कर चित ॥
"नासत नृपहिं फूट सो कैसे ।
"नदी वेग ढीले तट जैसे ॥"
यहि विधि नीति-राह दिखरावत ।
धवराने अनुजहि समुझावत ॥

तेहि छन अर्थ सरिस मनभाये।
भूपति पास व्यास मुनि आये॥
सहज वैर जो नर सब मानत।
चितवत शम तिनके मन आनत॥
सकै दाहि जो पातक घोरा।
तेज सरीर लसत चहुँ ओरा॥
तेज अनूप जाहि नर देखत।
सुख लहि जन्म सुफल निज लेखत॥
नासन हेत दुःख जनु गाढ़े।
सो तपखानि सौंह भये ठाढ़े॥
लख्यो मुनिहि विस्मित नृप धीरा।
पुण्य-रासि जनु धरे सरीरा॥
अति आदर हित वेग बस
वल्कल बसन हिलाय।
ऊँचे आसन सों उठे
तुरत भूप घबराय॥
फैलावत चहुँ ओर ज्यों
लाल किरन को जाल॥
छाड़त शृंग सुमेरु को,
दिनपति प्रातःकाल॥
सावधान ह्वै भूप पुनि,
सकल शास्त्र अनुसार।
कीन्हे मुनि के जोग तहँ,
पुनि पूजा सतकार॥
मुनि अनुसासन पाय पुनि,
आसन पर नरनाह।

वेदज्ञान पर शम सरिस,
सोहे सहित उछाह ॥
भये सेत मुसकात,
दसन-जोति सन ओंठ दोउ।
तेज लसत सब गात।
मुनि के बैठे सौंह नृप ॥
किरनजाल फैलाय,
चहुँ ओर आकास में।
गुरु के सन्मुख आय,
राजत औषधिनाथ ज्यों ॥

॥ इति ॥

तीसरा सर्ग

न के उपदेश से अर्जुन का तप करने जाना

शरद्-चन्द्र-कर सम अभिरामा।
निसरत बिमल देह सन धामा॥
लगत लांब अति श्याम सरीरा।
बैठे सुख सन मुनिवर धीरा॥
पिंगल रँग सिर जटा बिराजत।
बिजुरी सहित मेघ-छवि लाजत॥
रूप अलौकिक प्रगट जनावत।
अंग अंग प्रसन्न प्रगटावत॥
अनजाने जाने जो आवत।
सब के मन सनेह उपजावत॥
मृदुल मनोहर चितवनि डारत।
मधुर मधुर जनु बचन उचारत॥
जो श्रुति जग के पाप बिनासत।
जो प्रानिन के धर्म प्रकासत॥
तिनकी खानि मुनिहि नरनाथा।
अति बिनीत जोरे जुग हाथा॥
जानन हित मुनिआगम कारन।
लगे धर्मसुत बचन उचारन॥
"हरत पाप सब रज सम जोई।
"बिना पुण्य जो सुलभ न होई॥
"तव दरसन-प्रिय लागति ऐसी।
"बीते मेघ वृष्टि जग जैसी॥

"विप्र असीस सत्य भइँ आजू।
"सुफल भये मख के सब काजू॥
"तव आगम-कारन मुनिराई।
"आज लोक महँ लहेउँ बड़ाई॥
"श्रियहि बढ़ावत पाप नसावत।
"करि मंगल जग जस फैलावत॥
"जग-गुरु विधि सम दरस तुम्हारा।
"सकल अर्थ कर साधन हारा॥
"लहै न सुख जो लखि शशि-जोती।
"सो मम दृगन तृप्ति अब होती॥
"बन्धु-वियोग-दुःख बिसरावत।
"परम अनन्द चित्त अब पावत॥
"वृथा प्रश्न, हम हैं केहि लायक।
"तुमहिं न चाह कछुक मुनिनायक॥
"सुनन हेतु तव मङ्गल बानी।
"बोलत, नाथ, जोरि जुग पानी॥"
सुनि यहि विधि उदार नृप-बचना।
गिरा उदार मनोहर रचना॥
जयसिधि काज उपाय बिचारी।
बोले व्यास नेमव्रतधारी॥
"जो चाहत जग जस-अधिकाई।
"दोउ लोक निज भूति भलाई॥
"तिन कर उचित धर्म यह होई।
"जानैं बन्धु बराबर सोई॥
"हम तपसी तप निज धन मानहिं।
"हम विशेष सब कहँ सम जानहिं॥

'तऊँ देखि गुन शील तुम्हारा।
'झुकत चित्त तव ओर हमारा॥
'जो न चाह कछु हिय महँ राखी।
'रहैं परमपद के अभिलाखी॥
'साधु-पक्ष लेहैं पुनि सोऊ।
'तुम सम तात साधु नहि कोऊ॥
'वहि नृप के कै तुम सुत नाहीं?
'कै नहिं गुन विशेष तुम माहीं?
'बल सन वृथा तुमहि सो त्यागी।
'भयो विषय-रस कर अनुरागी?
'लिये सो कर्ण-आदि निज संगा।
'ह्वै है तासु सिद्धि सब भंगा॥
'दुष्ट संग आपति नित घेरत।
'दुष्ट संग जयसिधि मुँह फेरत॥
'तव रिपु लोक-लाज सब त्यागे।
"महा अधर्म करन जब लागे॥
"रहे धर्म पर दृढ़ तेहिं ठाँउँ।
'राख्यो धर्मराज निज नाऊँ॥
"दुखहूँ माहिं, सुख सोहत जोई।
'गुनसन प्रेम जनायो सोई॥
"तुम नित रहत साम-व्रत धारे।
"करि तुम सन छल शत्रु हमारे॥
"यद्यपि कीन्ह तुम्हार विनासा।
"तउँ तिन तव मति शील प्रकासा॥
"अपयश-भार शत्रु सिर लीन्हा।
"बड़ उपकार साथ तव कीन्हा॥

"तव भुजबल, हमार मत एहा।
"मिलिहै राज न कछु सन्देहा
"अस्त्र शस्त्र बल महँ आराती
"तुम सन प्रबल तात, सब भाँती॥
"अब तुम नृप, सोइ करहु उपाऊ
"बढ़ै अस्त्र-बल तेज प्रभाऊ॥
"समर माहिं लखि बल अधिकाई।
"जय-श्रिय बरत बीर नरराई॥
"हने भूप करि इकइस फेरे।
"सो भृगुनाथ गुरू जिन केरे॥
"लखि सु जासु बल तेज महाना।
"उत्तम गुण अधारबस माना॥
"जिन पर निज अधिकार न जानी।
"यमराजहु मन होत गलानी॥
"रन महँ लखि डोलत धनु ताके।
"उपजे त्रास चित्त नहिं काके?
"किये कोप, बरसावत तीरा।
"सहै ताहि तब को अस बीरा?
"लपट प्रचंड जीभ सम काढ़त।
"लोलन हित त्रिलोक जब बाढ़त॥
"प्रलय-काल की अगिनि समाना।
"तिन के गुरू द्रोण बलवाना॥
"भृगुपति-शिष्य अंग-नृप बीरा।
"समर माहिं छाड़ैं जब धीरा॥
"बिन कारण बिन अवसर पाई।
"जाके डर अति काल डेराई॥

"जीतब तिनहिं सुगम नहिं ताता।
"तऊ जो होय सहाय बिधाता॥
"करिय कहौं एक उचित उपाई।
"करै घोर तप अर्जुन जाई॥
"जिहि सन पाइ प्रबल हथियारा।
"करै शत्रु निज सकल संहारा॥
"विद्या सो तप साधन-योगा।
"जेहिं सन वस आवत सुरलोगा॥
"सिद्धि समान देन के काजा।
"आयौं यह छन तव ढिग राजा॥"
कह्यो अनुज सन सुनि नरनाहू।
"काज सिद्धि हित मुनि पहँ जाहू॥"
विनय सहित करि बचन प्रमाना।
गयो व्यास पहँ शिष्य समाना॥
सुखद भानु सम उवत प्रभाता।
रह्यो मुनीस बदन अवदाता॥
तहँ सन निसरि तेज सम ज्ञाना।
अर्जुन बदन-सरोज समाना॥
जोगहि जोग दीन्ह सिखराई।
तप प्रभाव छन महँ मुनिराई॥
खुले ज्ञान-दृग मन-तम भागा।
तत्व समस्त लखन सो लागा॥
लगि सिधियोग सरूप अनूपा।
चित-उत्साह तेज अनुरूपा॥
विजय-काज तप महँ मुनि ज्ञानी।
अहवन हित बोले यह बानी॥

"धरे जोग बल तेज शरीरा।
"जाय एकन्त चित्त करि धीरा॥
"धरे शस्त्र, मुनि के व्रत नाना।
"कीजिय जप उपास असनाना॥
"यहि तप सन सुरपतिहि मनाई।
"ह्वै हौ पूर्णकाम वर पाई॥
"सो तप काज जोग एक ठाऊँ।
"जानौं शैल शिलोच्चय नाऊँ॥
"अनुचर यक्ष एक छिन माहीं।
"पहुँचै है तहँ संशय नाहीं॥"
दै यहि बिधि निज शिष्यहि ज्ञाना।
भे मुनीस तहँ अन्तर्धाना॥
पुनि आदेश समान सुहावा।
श्रीकुबेर-अनुचर ढिग आवा॥
ताहि देखि अर्जुन गुन-अयना।
करि प्रणाम बोले मृदु बयना॥
मन उपज्यो विश्वास अपारा।
विससै ब्रन सज्जन-व्यवहारा॥
चलत यदपि रवि फिरि आवन हित।
तम सुमेरुकुंजन व्यापत नित॥
बन्धु-वियोग देखि संतापा।
त्यों चारिहु भाइन मन व्यापा॥
काजसिद्धि उत बिन सन्देहा।
इत खैंचत निज बन्धु-सनेहा॥
सुरपति-सुत निज चित्त सम्हारी।
धोरहि गन्यो दुःख अति भारी॥

रिपु पर प्रबल कोप इक ओरा।
इक दिसि निज बल तेज अथोरा॥
निज धीरज, सुनि बचन प्रमाना।
शोकहि मन न दीन्ह असथाना॥
तजि चारिउ अतुलित बलधामन।
तम समान दिन के बहु यामन॥
सुमिट सु शोक-राशि सम भयऊ।
राति सरिस कृष्णा पहँ गयऊ॥
डारब आँसु अमङ्गल जानी।
रोक्यो निज दुख यद्‌पि सयानी॥
आँसू-भरे नैन दोउ ता के।
ओस लसत पंकज उपमा के॥
मूँदि न सकी प्रेम बस भारी।
प्रगटत चित्त-भाव सुकुमारी॥
पागी सांच प्रेम-रस बांकी।
ललचौंहीं सों डीठ प्रिया की॥
लीन्हों राह-सगुन सम बीरा।
मन-प्रसन्न-अँगुरिन चित-धीरा॥
धीरज छुटत छोभ निज उर धरि।
बनगज परत मनहुँ ग्रीषम-सरि॥
दुख सन गद्‌गद पियहि निहारी।
बोली तेहि छन राजकुमारी॥
"हम सब कर गौरवधन, नाथा।
"फँस्यो कीच सम रिपु-छल-हाथा॥
"ताके तुमहिं उबारनहारे।
"सब आश्रित, प्रिय नाथ, तुम्हारे॥

"जब लगि सो न होय तप पूरा ।
"जो करि सकै सकल दुख दूरा ॥
"भ्रात मात कै नारि-बिछोहू ।
"सुमिरत नाथ दुखी जनि होहू ॥
"जो चाहत जस, कै ढूंढ़त सुख ।
"काम अलौकिक करन किये रुख ॥
"ते रहि दृढ़ सब सोच बिहाई ।
"करैं तासु हित जोग उपाई ॥
"मिलत ताहि सिधि, चाह भरी तिय ।
"लगत धाय जैसे निज पिय हिय ॥
"क्षत्रिय जग रक्षाअधिकारी ।
"जय, क्षत्रिय-कुल सम्पति सारी ॥
"हरि सो नास कीन्ह अभिमाना ।
"गनत क्षत्रि जेहि प्राण समाना ॥
"स्वजन हाथ मन होत निहारी ।
"लखि जेहि रहै मष्ट सब मारी ॥
"सभा झुकाइ घृणा सन सीसा ।
"देख्यो संशय करत महीसा ॥
"जो जस दिशा अन्त लगि छावा ।
"जिन बितान सम ताहि छिपावा ॥
"जो कीरति पहिले की पाई ।
"तेहि जिन एक छन माँहि मिटाई ॥
"बीर काज जो किये सुहाये ।
"सो सब नित पल माँहि दबाये ॥
"ज्यों दिन अन्त साँझ जब होती ।
"नासत सकल भानु की जोती ॥

"करी रिपुन सो अपति हमारी।
'सुमिरत चित अति होत दुखारी॥
"सहौ ताहि कैसे धरि धीरा।
'लिये हिये महँ घाव गँभीरा॥
"सूखत रह्यो कछुक दिन बीते।
'तव बिछुरत अब, नाथ पिरीते॥
"दुःख चोट निज ऊपर पाई।
'ह्वै है हरा हाय दुखदाई॥
'बिगरो रूप नसत कै माना।
'टूटत दाँत गजराज समाना॥
'रिपु प्रताप कै तेज बिनासा।
'शरद्-मेघ जिमि प्रात उजासा॥
'काज न पाय लाज के मारे।
'कै न अस्त्र निज अँग अँग धारे।
कै जस मिटत ग्लानि बड़ि मानी?
'भे तलाव सम सूखत पानी॥
'सो अनुभव न सोइ आकारा।
'भयो और कछु रूप तुम्हारा॥
'नाथ बिहीन केस कै मोरे।
'बचे अजहुँ जो दैव-निहोरे॥
'खैंचि जिनहि दुर्योधन-भाई।
'धूर मिलाय दीन्ह छिटकाई॥
हरयो तुम्हार तेज बल-सारा?
सो अर्जुन तुम पांडुकुमारा?
छत्रिय-अर्थ सिद्ध जग सोई।
छत सन सुजन बचावै जोई॥

"सोइ धनुष जेहि हाथ उठावत।
"रन के कर्म-शक्ति नर पावत॥
"इक सहाय इक निज कर लीन्हे।
"रहै जो लोग अर्थ दोउ कीन्हे।
"झूठ शब्द-उत्पत्ति बतावत।
"ते ज्ञानिन कहँ दोष लगावत॥
"बिना तेज तुम कहँ नित लेखत।
"तब पहँ रहत क्षमा तब देखत॥
"हम समान दुख दुखित मलीना।
"तुम्हरे गुनहु होइ नित छीना॥
"कहँ तुम सिंह सरिस बल धारे।
"कहँ गज सम सोइ शत्रु तुम्हारे॥
"तुम तेहि छन प्रमाद कछु कीन्हा।
"तुमहि दबाय शत्रु तब लीन्हा॥
"अब यह काज तुम्हारेहि लायक।
"ज्यों दिन-तेज-जोग दिननायक॥
"कहैं जु करन अलौकिक काजा।
"गौरव सहित साजि सब साजा॥
"वढ़ि जग सम पदवी जो पावत।
"अद्वितीय सो बीर कहावत॥
"करत पुरुष गुन तेज बखाना।
"गिनती करैं न तासु सुजाना॥
"बिन कारन जो दुःख हमारा।
"चेति चित्त अकुलात तुम्हारा॥
"जय हित आहु हमार कलेसा।
"हरिहै इष्ट-देव अमरेसा॥

"जाहु नाथ जेहि बिजन प्रदेसा ।
"यदपि न तहाँ बिघ्न कर लेसा ॥
"रहि अकेल जिनि करेहु प्रमादा ।
"तजेहु न निज कुल की मरजादा ॥
"राग बैर जो निज हिय धारत ।
"साधुन हूँ के काज बिगारत ॥
"अब तुम करि प्रमान मुनि-बानी ।
"पूजि आस सब हरहु गलानी ॥
"करि सिधि काज तुमहिं फिरि पाई ।
"ह्वै हौं पूर्णकाम उर लाई ॥"
सुनत बैन यह द्रुपदसुता के ।
बाढ़ो प्रबल क्रोध चित ता के ॥
फिरि अपमान-घाव जनु लहेऊ ।
कोप तेज सन सब तनु दहेऊ ॥
ज्यों उत्तर दिसि महँ गति पाई ।
होत दिनेस-तेज अधिकाई ॥
मंत्र सहित पुनि अस्त्र सुहावा ।
कुलगुरु धौम्य ताहि पहिरावा ॥
पहिरत अस्त्र तेज तन बाढ़ा ।
सौंहहि देखि मनहुँ रिपु ठाढ़ा ॥
भा कराल रिपु-मारन-जोगा ।
शान्त मंत्र ज्यों किये प्रयोगा ॥
अस्त्र अमोघ धनुष तन धारा ।
छिपै न जगत जासु टंकारा ।
लख्यो न शत्रु समर महँ जोई ।
खड्ग सहित निषंग द्वय सोई ॥

जस सम चमक सकल अँग छावत।
बज्र-घाव के दाग दिखावत॥
नभ रँग कवच धरयो सोइ बांका।
रतन-तार सम चित्र चित्र टांका॥
श्री कुबेर-अनुचर तुरत
जो बतराई गैल।
चलि सोइ पहुँच्यो इन्द्र-सुत
तुरत शिलोच्चय शैल॥
भरि आये तपसीन के
दृग तेहि आवत देखि।
फिरि तिनके मन ऊपज्यो,
तापर नेह बिसेखि॥
सुर दुंदुभी की रुचिर धुनि
आकास में चहुँ दिसि छई।
अधिकाइ सोभा व्योम की
पुनि वृष्टि फूलन की भई॥
सन्देस प्रिय जनु कहन हित
निज लहर बाहु बढ़ाइ के।
धरनीहि लपट्यो मानि परम
—अनन्द सागर धाइ के॥

॥ इति ॥

चौथा सर्ग

शरद ऋतु

नदत हंस की पांति बिराजति ।
मानहुँ मंजु करधनी बाजति ॥
पाके धान-खेत चहुँ ओरा ।
दिखरावत मानहुँ तन गोरा ॥
सोहो भूमि गाँवँ के पासा ।
तिय सम जोवन किये प्रकासा ॥
सोइ महि पास सकलजन-प्यारा ।
पीतम सम अर्जुन पगुधारा ॥
सूखे कीच धरनि मन मोहत ।
खिले सरोज सरोवर सोहत ॥
झुके धान की बालि सुहाई ।
भेंट शरद्-प्रिय की जनु पाई ॥
खोले कमल-नयन सर धारत ।
सफरी-गति जनु चकित निहारत ॥
छीने प्रिया-डीठि की सोभा ।
लखि लखि पृथापुत्र-मन लोभा ॥
पके-धान-युत-छोर तलावा ।
कमल बीच ताके मन भावा ॥
लखि दुर्लभ अनुरूप सँयोगा ।
सदा अनन्द लहैं मन लोगा ॥
झरत कमल सन विमल परागा ।
जब सरोज-थल के सम लागा ॥

पहिन मारि जल फेन-दिखावा।
अर्जुन-मन सन्देह मिटावा॥
डोलत मन्द मन्द सरि-नीरा।
सेत रेत फैल्यो दोउ तीरा॥
लागत लहर परी जनु रेखा।
धोती सेत सरिस सोइ देखा॥
सोहत बीच पराग सोहाये।
भँवर बीच सुन्दर चिपकाये॥
दुपहरिया के फूल अनूपा।
जनु सोइ करत ओठ अनुरूपा॥
लागत घाम लाल रँग पाये।
कमलधूरि दोउ कुचन लगाये॥
श्रम सन जब पसेव तन आवत।
पुलकत सकल देह फैलावत॥
चितै तिरीछ डीठद्युति डारी।
कीन्हे करनफूल-छवि न्यारी॥
बालहि देख रखावत धाना।
शरदहि जिष्णु कृतारथ माना॥
राति समय बन सन चरि आवत।
विषम भूमि पर चलन न पावत॥
मिलन हेत बछरन व्याकुल-मन।
आवत स्रवत दूध भारी थन॥
गाइन कहँ तेहि ठाँव निहारा।
लहत पाँडुसुत अनँद अपारा॥
बरध युद्ध महँ मारि हटाई।
दहडत जयश्रिय लसत सुहाई॥

तोरत सींग मारि सरि-कूला।
विचरत मन अनन्द सन फूला॥
तहँ शरद्-ऋतु पुष्टि विशेषा।
सांड एक वन महँ सोइ देखा॥
हिम समान अति उज्ज्वल रङ्गा।
डोलत मन्द मन्द एक सङ्गा॥
चलत गाय सरि-तट छवि होती।
तियन-जांघ खसकत जिमि धोती॥
ढोरन सगे बन्धु सम जानत।
वन कहँ घर समान सोइ मानत॥
लख्यो ग्वाल गैयन के पासा।
चित-मोलापन करत प्रकासा॥
हिलत सीस पर केश लखाते।
मानहुँ भ्रमर-पुञ्ज मँडराते॥
कछु मुसक्यात दसन की पाँती।
खिलत विमल केसर की भाँती॥
कुण्डल हिलत चलत दोउ दिसि श्रुति।
परत मनहु प्रभात-रवि द्युति॥
खिले सरोज सरिस मुखवारी।
लखीं तहाँ गोपन की नारी॥
रोकि साँस कछु अधर कँपावत।
पल्लव हिलत लताछवि पावत॥
मोरि अङ्ग निज हाथ चलावत।
खैंचत जोत नितम्ब घुमावत॥
मेघ-गरज सम सुनि सोइ सोरा।
होत मस्त आँगन महँ मोरा॥

चलत रईं माथनिन एक संगा।
होत शब्द जनु बजत मृदङ्गा॥
श्रम सन दृग-सरोज मुरझाये।
डोलत भरे उरोज सुहाये॥
करत नाच नर्तकी समाना।
गोपिन देखि परम सुखमाना॥
सूखो होत शरद् ऋतु आवत।
चलत सकट सब कीच दबावत॥
चलत नित्य जो पथ बिलगाना।
सोइ मग पूरब कीन्ह पयाना॥
देख्यो धान-खेत दोउ ओरा।
चरत परे तिन महँ बहु ढोरा॥
देखी यहि शरद् की सोभा।
सुरपतितनय केर मन लोभा॥
बिन पूंछेहु बोल्यो सुचि बानी।
चूक, न चतुर, भाव मन जानी॥
"फल दै सफल करत संसारा।
"करै शरद् कल्याण तुम्हारा॥
"होनहार मङ्गल की खानी।
"धरे सेत घन निर्मल पानी॥
"पके खेत सुन्दर अब लागत।
"प्रबल वेग सरिता निज त्यागत॥
"मिटो कीच नव गुन जग पाई।
"घन-आगम की प्रीति भुलाई॥
"बगुली सेत उड़ैं अब नाहीं।
"रह्यो इन्द्रधनु नहिं घन माँही॥

'तउ शोभा नभ धरत अनूपा।
'जे सुभाउ सन सुन्दर रूपा॥
'यदपि न कछु भूषण तन धारें।
'जग के चित्त लुभावनहारे॥
'पावस-पति-वियोग दुख पाई।
'दिसा-वधू प्रगटी कृसताई॥
'विन पय भये पयोधर सुन्दर।
'विज्जु-जँजीर लसै नहिं तिन पर॥
'पावस विते होत मद थोरा।
'रक्त कंठ कूकत नहिं मोरा॥
'तासु चाह तजि मत्त हंसधुनि।
'मुदित होत जन मन अब सुनि सुनि॥
'परिचय सन सोइ होत पियारा।
'मानत गुनहिं सकल संसारा॥
'मोटी लगैं धरे यह शाली।
"पाकत होत पीत रंग वाली॥
"नील कमल सुगन्ध सूँघन हित।
"जल दिसि लखहु सीस नावत नित॥
"हरा होइ पुरइन-रंग पाई।
"खिले कमल सन लहि अरुनाई॥
"होत पीत रँग पाकत धाना।
"भयो नीर नभ-धनुष समाना॥
"आँचर सम जब वायु झकोरत।
"सप्तपर्ण की धूरि बटोरत॥
"बान नैन-छवि करत प्रकासा।
"फूल मनहुँ बनराजि-सुहासा॥

"अब नहिं बिज्जु नयन झपकावत
"अब नीरद कछु धाम छिपावत।
"अब अकास महँ चलत बयारी
"जल के बूंद कमल-रँगधारी॥
"तिन महँ, लखहु, हंस अब धावहिँ
"मधुर मंजु निज बोल सुनावहिँ।
"वारिद-रोक छुटत नभ माहीं
"लागै, मनहुँ दिसा बतराहीं॥
"चरि चरि गाय हार सन आवत।
"पाँति तोरि गोडन दिसि धावत॥
"बँधें सौंह निज बच्छ बिलोकी।
"स्रवत दूध थन सकैं न रोकी।
"बाहर सन जननी ज्यों आवत।
"बच्छ हेत भोजन कछु लावत॥
"प्रजा-तुष्टि-कारन जग-पावनि।
"बच्छ संग गोपाँति सुहावनि॥
"गोडन माँहि लगैं सो कैसी।
"मंत्र संग श्रुति आहुति जैसी॥
"जिन मद-मत्त शिखी-धुनि जीती।
"सुनत मंजु गोपिन की गीतीं॥
"यद्यपि मृगिन भूख अति बाढ़ी।
"खेत न जाहिं रहैं सोइ ठाढ़ी॥
"नलिन सौंह सो सिरहु नवाई।
"सक्यो तासु नहिँ मान मिटाई॥
"भयो पीत रङ्ग कलम मलाना।
"दहत काम तन पुरुष समाना॥

"पंकज-रज हिलाय सँग धारी।
"जल-सीकर-युत लहत बयारी॥
"भँवर-भौंर भूलत देखहु गति।
"दुष्ट चरति ज्यों परत विपति अति॥
"चुन्नी-रंग लाल चोंचन महँ।
"पियरी वाज उड़त लीन्हे तहँ॥
"सिरिस फूल सम शुक कै पाँती।
"सोहत इन्द्रधनुष की भाँती॥"
करत यदु इमि शरद्-बखाना।
देख्यो सौंह नगेस महाना॥
शुचि अकास लगि शिखर उठाये।
उष्णरश्मि को बिंब छिपाये॥
होत सेत रँग जल बरसाई।
ठाढ़ो मेघ-पुञ्ज की नाईं॥
देवनाथ सुत जाय
हिम-वस-उज्जल शैल पर।
जाके श्याम सुहाय
तट पर बनराजी लसत॥
सुमर्‍यो अर्जुन वीर
मद-लाली छूटे मनहुँ।
श्रीबलराम—शरीर
किये काछनी नील पट॥

॥ इति ॥

पाँचवाँ सर्ग

हिमालय-वर्णन

कै जीतन-हित मेरु पहारा।
देखन हेत जगत संसारा॥
ठाढ़ो नभ छेदत जनु जोई।
अर्जुन गयो हिमालय सोई॥
चमकत भानु तेज एक ओरा।
फैलो एक दिसि निसि-तम घोरा॥
हँसत विमल दसनन-द्युति डारत।
निज सन्मुख तम-पुंज निवारत॥
पीछे काल नाग की धारी।
सोहत शैल मनहुँ त्रिपुरारी॥
सुर नर सिद्ध बसैं तेहि माहीं।
देखैं एक एक कहँ नाहीं॥
निज प्रभाव जनु चहत दिखावा।
जग-प्रतिनिधि तेहि ईस बनावा॥
सेत सेस सम सिखर सुहाये।
लखियत मनहुँ गगन महँ छाये॥
कनक-रेख बिच बीच दिखावत।
शरद-बिज्जुयुत घनहिं लजावत॥
रत्न-जोति नित प्रति जहँ परहीं।
जहँ सुरतिय बिहार नित करहीं॥
सोहत अमित लता के गेहा।
लखि बन होत नगर-सन्देहा॥

घाटी शुचि फाटक सम लागैं।
कुसुमित बन सोहत जनु बागैं॥
होत सेत नितप्रति जल बरसत।
बिजुरीतेज न जेहि महँ दरसत॥
बिना नाद घन लसि तट नाना।
लगैं शैल के पंख समाना॥
बनगज नीर-पान हित आवत।
तटन तोरि सोपान बनावत॥
बहत बीच सरि निर्मल-नीरा।
खिले कमलयुत बेग गँभीरा॥
गुड़हल के रंग चमक घनेरी।
परी बीच बिच पाथर-ढेरी॥
परत तासु हुलशिखरन जोती।
साँझ समान प्रगट तहँ होती॥
माल सरिस तहँ लगे तमाला।
खिले कदम्ब के कुंज बिशाला॥
जल टपकत तहँ गलत तुषारा।
गज सम चलत मनहुँ मदधारा॥
बिना रत्न तहँ शिखर न होई।
लता-भवन बिन गुहा न कोई॥
नहिं कोउ रूख बिना शुचि फूला।
नहीं नदी बिन अम्बुज-कूला॥
भरे-जघन सुचि मेखलवारी।
नदियन महँ नहात सुरनारी॥
मौलसिरिन महँ अति सुख मानी।
चहुँ दिसि साँप-पाँति लपटानी॥

उज्वल विमल लसत हिम शृंगा।
तहँ मनिजोति परत बहु रंगा॥
सोहत मनहुँ इन्द्र-धनु धारे।
ढिके सेत घन तासु सारे॥
सोंह तुषारपुंज सम लागत।
सुनि गरजन जन मन-भ्रम त्यागत॥
मानस विमल ताल यहि गिरि महँ।
खिले सरोज, हँस कूजत जहँ॥
राति समय नित औषधि नाना।
करत प्रकास सुगेह विमाना॥
सुमिरत गन* लखि तेज अपारा।
मानहुँ त्रिपुर फेरि शिव जारा॥
उपल-रासि महँ होय अधीरा।
परत वेग सन उछरत नीरा॥
चलत ऊँच तट विमल तरंगा।
सोहत चँवर लिये जनु गंगा॥
नग देखत विस्मित तेहि जानी।
कही धनद-अनुचर यह बानी॥
अवसर पाय बचन सब ही के।
हरैं चित जग महँ प्रिय नीके॥
"यह नगपति दरसन सन जाके।
"छूटि जात सब पाप प्रजा के॥
"हिम ऊँचे शिखरन पर लीन्हे।
"नभ के सहस खंड जनु कीन्हे॥

---

* महादेव के अनुचर।

" अन्तर मध्य नहीं कोउ जानत ।
" कछु कछु याहि पुरान बखानत ॥
" व्यापै ओर छोर लौं जग के ।
" दुर्गम अतिहि गहन यहि नग के ॥
" आदि अन्त कमलासन जाना ।
" ब्रह्म अनादि अनन्त समाना ॥
" लता भवन विकसे जहँ फूला ।
" कमल लसत सरवर सुख मूला ॥
" बैठी किये मान पिय ढिग तिय ।
" लखत अधीर होत तिनकर हिय ॥
" जो धन भाग्यमान कछु पावा ।
" चलत चलत नित नीति-चलावा ॥
" तासु निधान-रासि यहि माँहीं ।
" राजराज जो देखि सिहाहीं ॥
" सो निधान निज माँहँ दिखावत ।
" स्वर्ग पतालहु धरनि लजावत ॥
" मैं जानत त्रिभुवन नहिं पाई ।
" यहि नगपति-महिमा अधिकाई ॥
" महिमा जासु जान नहिं कोई ।
" इहाँ बसैं गौरीपति सोई ॥
" जरा मरन से रहित विमल-गति ।
" जो चाहत तिनके चित शुचि मति ॥
" उपजै यहि गिरि के ढिग आये ।
" तत्व-ज्ञान ज्यों वेद पढ़ाये ॥
" फूल-सेज कुंजन लखि परहीं ।
" जहँ सुरतिय विहार नित करहीं ॥

"सब जग बन्दनीय गिरिराजा।
"यहि के लखि मंगल गुन-साजा॥
"न्यायी नृपहि न ज्यों श्रिय त्यागत।
"औषधि-तेज रातदिन जागत॥
"झुकीं फूल-भारन तरु-डारैं।
"मधुर बोल तहँ कुररि उचारैं॥
"लगे रूख सरितन के तीरा।
"नासत गज-तन-ताप उसीरा॥
"इहँ सुरगज कनपटी खुजावहिं।
"रूखन महँ मद रुचिर लगावहिं॥
"धावत तहाँ भ्रमर घबराने।
"जानि अकाल आम बौराने॥
"सोइ भ्रमसन बसन्त-ऋतु जानी।
"नदत मत्त कोकिल सुख मानी॥
"चलत फिरत यहि गिरि सुरनारी।
"करैं सोर सरि निर्मल-वारी॥
"जग-रक्षक अहिपति जेहि चहहीं।
"अमिय सो तजि सब जग इहँ रहहीं॥
"लताभवन महँ औषधि नाना।
"होत तेल-बिन दीप समाना॥
"सुरतरु-पल्लव सेज बनाई।
"कमल कलुक लहि अमहिं मिटाई॥
"भोगत नित अनन्द सुरनारी।
"स्वर्गवास-सुख देहिं बिसारी॥
"इहँ जब शैलसुता तप कीन्हा।
"जु[illegible] ँ वास जाय पुनि लीन्हा॥

" जहँ जलजन्तु मथत सरिनीरा।
" चले नयन कछु भई अधीरा॥
" धरयो ताहि तब त्रिभुवननाथा।
" लसत-सेद-अंगुरी निज हाथा॥
" देव असुर जेहि रई बनाई।
" मथ्यो सिन्धु पाताल हिलाई॥
" अजहुँ करत अहि-रगर प्रकासा।
" छेदत मंदर लखहु अकासा॥
" चमकत फटिकरतन की भीती।
" ज्यों चन्द्र अस होत प्रतीती॥
" लसत नीलमनि-द्युति चहुँ पासा।
" परि ऊपर रवितेज प्रकासा॥
" सुन्दर-नारि-भृकुटि सम चंचल।
" चलत चक्रगति सर-सरितन-जल॥
" मन्द पवन तहँ कमल हिलावत।
" जनु विलासयुत नाच नचावत॥
" होत प्रेम बस नयन अधीरा।
" परसत थर थर कँपत शरीरा॥
" ओषधि-कँगन बँध्यो गिरजा-कर।
" भुजग उतारि इहाँ पकरयो हर॥
" इहँ मनिजोति अनेक प्रकारा।
" फैलत करि प्रकाश नभ सारा॥
" सहस-किरन जो भानु कहावत।
" कोटि-किरन-युत ताहि बनावत॥
" तोषन हित निज मित्र महेशा।
" जहाँ पुरी शुचि रची धनेशा॥

" सो कैलास शैल यह आगे।
" जाके शिखर व्योम महँ लागे॥
" ताकी ओट होत रवि-जोती।
" साँझ अकाल तहाँ नित होती॥
" मनि चमकत घाटिन महँ नाना।
" बनै शृङ्ग चित्र भीत समाना॥
" बार बार जहँ चलत बतासा।
" यहि गिरि माँहि करै श्रम नास
" इहाँ खेत नित लगैं सुहावन।
" हरे लखायँ सदा नलिनी-बन॥
" फूलन लसे रहैं सब रूखा।
" लखिय न इक पल्लव तहँ सूखा॥
" चमकत तट सुरत्न शुक-रङ्गा।
" मिलि सोइ भानु जोति के सङ्गा॥
" हरनी हरी घास तेहि जानी।
" चलत खान फिरि हटैं खिसानी॥
" गिरितट थल-सरोज-बन लागा।
" उड़ि उड़ि तेहि सन विमल परागा॥
" घूमि घूमि तेहि वायु उठावत।
" हीलत-कनक-छत्र-छवि पावत
" बड़ा कछुक पद दच्छिन जनावत।
" बायें जावक-रेख दिखावत॥
" द्वय पदचिह्न गङ्ग के तीरा।
" प्रगटत भेद सुनहु मतिधीरा॥
" किये नियम नहिं सङ्ग बिहाये।
" शिवा समेत शम्भु इहँ आये॥

" बादल रजतभीत-द्युति पाई।
" झीलत-लता तरुन बिच आई॥
" रवि-कर-पुञ्ज परे यहि माहीं।
" मनहु दर्पनी महँ परछाहीं॥
" भिरत वप्र सन शिववृष एहा।
" कीन्हे लखहु गोल निज देहा॥
" उज्वल तेज लसत चहुँ ओरा।
" बैठी शैलशिखर तन गोरा॥
" ग्रामबधू अति भोरि निहारत।
" उवो शैल पर चन्द्र बिचारत॥
" यह ऋतु माहिं बिना जल के घन।
" उवै जो धनुष-खंड कोउ कारन॥
" शिखर-मनिन की द्युति तहँ परहीं।
" टूटे भाग पूरे नित करहीं॥
" अमिय-धार-युत किरन गिराई।
" नई लता पल्लव पर छाई॥
" शम्भु-शीश-शशि करि तम-नासा।
" कृष्ण पक्ष महँ करत प्रकाशा॥
" सुरपति-प्रिय नगेस यह सुन्दर।
" धरे अनेक हेम के कन्दर॥
" किये स्वर्ण के रँग बन जोई।
" इन्द्रकील आगे लखु सोई॥
" फटत वायुबस कुञ्ज-लतन के।
" निसरत भभक तेज सुबरन के॥
" बादल मनहुँ किरन बस चमकत।
" लागत मनहुँ दामिनी दमकत॥

" भजत देखि सोइ सकल मतङ्गा।
" कँपत ध्रसत तट गिरत भुजङ्गा॥
" मद धोये निज तनहिं दिखावत।
" सुरतरु सुरगज चाल बतावत॥
" नीरद-पुञ्ज सरिस अति श्यामा।
" परत नीलमनि-द्युति अभिरामा॥
" कँदरन माहि जोति रवि केरी।
" तमयुत रहत न छुटत अँधेरी॥
" मुनिआज्ञा सन धरे शस्त्र नित।
" करहु इहाँ तप रहत शान्तचित॥
" हित के काज करत जब कोई।
" बिना विघ्न कोउ सफल न होई॥
" तेरे इन्द्रिय के तुरङ्ग
तोहि न देहिं भटकाय।
" तेरे तप के दुःख में
शङ्कर होंहिं सहाय॥
" तप महँ नित रक्षा करैं
तव बल की सुरराज।
" फलयुत निज कल्यान हित
करहु सदा सब काज॥"
कहि यहि विधि प्रिय बचन तेहि
लहि पुनि तासु प्रणाम।
राजराज-अनुचर गयो
ताहि छाँड़ि निज धाम॥
अर्जुन-मन व्याकुल कियो
एक छिन तासु वियोग।

बिछुरत ही दुख देत हैं
जग महँ सज्जन लोग ॥
थोरे ही श्रम जो अमित
मनवांछित फल देत ।
जाकी सरबरि होति नहि
सो गिरि सार-निकेत ॥
चित-चेरयो श्रिय-अमित-युत
विपुल जासु विस्तार ।
निज पौरुष सम शैल पर
पहुँच्यो पृथाकुमार ॥

॥ इति ॥

छठा सर्ग

इन्द्र का अर्जुन के पास अप्सराओं को भे

रूप सील दोउ धरत सुहाई
गङ्गा सौंहँ इन्द्र-सुत जाई ।
इन्द्रकील गिरि चढ़्यो सम्हारी
ज्यों खगपति की पीठ मुरारी ।
जानि समीप इन्द्रसुत आये
अलि-मुख सन जयघोष सुहाये ।
हिलत पवन बस तरुवर नाना
डारे फूल सुगन्धि समाना ।
चलत तोरि सुरसरित-तरंगा
पंकज-धूरि लिये निज संगा ।
आइ सौंह सन सुखद समीरा
भेंट्यो मित्र सरिस सोइ बीरा ।
गिरत शैल सन खड्डन माँही
पथरन बीच फैलि सोइ जाहीं ।
सारस हँस बैठि तट गावत
सोइ धुनि महँ निज बोल मिलावत ।
सुनि झिरनन कर शब्द सुहावा
मंगल-तूर सरिस सुख पावा ।
देवदारु तरु कछुक डुबाये
देख्यो सुरसरि-नीर सुहाये ।
करत बेंतवन ताहि प्रणामा
करि सु होत जन पूरनकामा ।

परत कमल-रज अरुणित-अंगा।
हिलत कछुक सोइ चलत तरंगा॥
कलहंसन छबि धरत बिसेखा।
सरि-चोलना सरिस सोइ देखा॥
गज-दाँतन की चोट दिखावत।
लगी देखि मद मधुकर आवत॥
तट विलोकि अर्जुन सुख माना।
बिपतिहु महँ सुख देत महाना॥
सुबरन-भीति लहर टकराहीं।
चक्रवाक सम उड़त लखाहीं॥
दीन वचन सहचरहि पुकारत।
रांभयो सो चकईहि निहारत॥
परे नीर महँ मनि-गन नाना।
लहर रंग लखि अर्जुन जाना॥
भिन्न भिन्न आकार निहारत।
चित्तभाव ज्यों चतुर विचारत॥
पाथर लगत तरंग उठावत।
प्रबल वायु चहुँ दिसि छिटकावत॥
केतकि-रंग फेन सो देखा।
सरि-मुलुकान सरिस तेहि लेखा॥
मोर-चन्द्रिका सम अति सुन्दर।
देखे दानबूँद जल ऊपर॥
मानहुँ गज-देखन-अभिलाखी।
खोलीं सरित हजारन आँखी॥
परो रेत जनु सेज बनाई।
जागि खोलि मुख लेत जम्हाई॥

मुकतामनि अति बिमल दिखावत ।
जनु दृग खुलत आँसु कढ़ि आवत ॥
सीपी तहँ हरिपुत्र सुजाना ।
भये प्रभात वधू सम जाना ॥
उगे प्रवाल-विटप जल भीतर ।
उज्वल फेन लसत जब तिन पर ॥
लाल अधर पर दसन समाना ।
सुमिरयो जिष्णु प्रिया-मुसकाना ॥
जल महँ सोवहिं लख्यो मतंगा ।
सूंघि जासु मद उठत तरंगा ॥
उछरैं मगर सूंस बहुतेरे ।
गज सन भिरन हेत जनु प्रेरे ॥
विस्मित भयो देखि पुनि आगे ।
अजगर कछु उछरन जब लागे ॥
नभ दिसि करत प्रचंड फुकारा ।
विष संग भाप उड़ाय अपारा ॥
ह्वै शीतल जलकन इक ठाईं ।
सोहत शरद्मेघ की नाईं ॥
तट के रेत जाँघ सम सोहत ।
चलत मीन दृग सम मन मोहत ॥
गंगहिं मिली सखी सम जोई ।
कीन्ही पार नदी बहु सोई ॥
लगे जहाँ तरु अमित सुहाये ।
फूल-भार सन सीस भुकाये ॥
गिरि ऊपर सुभूमि सोइ गयऊ ।
पहुँचत मन प्रसन्न अति भयऊ ॥

फूली लता सिखर चहुँ ओरा।
विपुल रूख फल धरत न थोरा॥
करन हेत तप शैल सुहावा।
अर्जुन-चित उत्साह बढ़ावा॥
करि दृढ़ मति तहँ विधि अनुरूपा।
लग्यो करन तप धरि मुनिरूपा॥
भयो न श्रमित करत तप घोरा।
गनैं धीर नहिं काज कठोरा॥
इन्द्रिय जीति शान्ति चित धारी।
नासे पापवृत्ति मन सारी॥
बढ़यो नित्य लहि पुण्य अमन्दा।
दिन दिन कला सहित ज्यों चन्दा॥
नासे मोह काम अरु क्रोधा।
उपजत शम चित बाढ़त बोधा॥
ताकी विषय-सँग-रति नासी।
बाध-रहित शम-जनित हुलासी॥
करि करि नित प्रणाम जप सेवा।
पूज्यो जिष्णु देवपति देवा॥
वीर-शान्तरस-युत एक संगा।
धरे अलौकिक तेज अभंगा॥
श्याम गात नीलम-द्युति लाजत।
नित नहात सिर जटा विराजत॥
भानु-ज्योति सिर लसत सुहाई।
तरु तमाल-उपमा सो पाई॥
रह्यो यदपि आयुध सो धारे।
मुनि सन बढ़े चरित लखि सारे॥

मुकतामनि अति बिमल दिखावत।
जनु दृग खुलत आंसु कढ़ि आवत॥
सीपी तहँ हरिपुत्र सुजाना
भये प्रभात बधू सम जाना॥
उगे प्रबाल-विटप जल भीतर।
उज्वल फेन लसत जब तिन पर॥
लाल अधर पर दसन समाना।
सुमिरयो जिष्णु प्रिया-मुसकाना॥
जल महँ सोहहिं लख्यो मतंगा।
सूंघि जासु मद उठत तरंगा॥
उछरैं मगर सूंस बहुतेरे।
गज सन भिरन हेत जनु प्रेरे॥
विस्मित भयो देखि पुनि आगे।
अजगर कछु उछरन जब लागे॥
नभ दिसि करत प्रचंड फुकारा।
विष संग भाप उड़ाय अपारा॥
है शीतल जलकन इक ठाईं।
सोहत शरद्मेघ की नाईं॥
तट के रेत जाँघ सम सोहत।
चलत मीन दृग सम मन मोहत॥
गंगहिं मिली सखी सम जोई।
कीन्ही पार नदी बहु सोई॥
लगे जहाँ तरु अमित सुहाये।
फूल-भार सन सीस झुकाये॥
गिरि ऊपर सुभूमि सोइ गयऊ।
पहुँचत मन प्रसन्न अति भयऊ॥

फूली लता गिरवर चहुँ ओरा।
विपुल रूख फल धरत न थोरा॥
करन हेत तप शैल सुहावा।
अर्जुन-चित उत्साह बढ़ावा॥
करि दृढ़ मति तहँ विधि अनुरूपा।
लग्यो करन तप धरि मुनिरूपा॥
भयो न श्रमित करत तप घोरा।
गनैं धीर नहि काज कठोरा॥
इन्द्रिय जीति शान्ति चित धारी।
नासे पापवृत्ति मन सारी॥
बढ़यो नित्य लहि पुण्य अमन्दा।
दिन दिन कला सहित ज्यों चन्दा॥
नासे मोह काम अरु क्रोधा।
उपजत शम चित बाढ़त बोधा॥
ताकी विषय-सँग-रति नासी।
बाध-रहित शम-जनित हुलासी॥
करि करि नित प्रणाम जप सेवा।
पूज्यो जिष्णु देवपति देवा॥
वीर-शान्तरस-युत एक संगा।
धरे अलौकिक तेज अभंगा॥
श्याम गात नीलम-द्युति लाजत।
नित नहात सिर जटा विराजत॥
भानु-ज्योति सिर लसत सुहाई।
तरु तमाल-उपमा सो पाई॥
रह्यो यदपि आयुध सो धारे।
मुनि सन बदे चरित लखि सारे॥

तेहि सन बन खग मृग सुख पावा ।
को न देखि गुन बस महँ आवा ॥
लिये सुगन्ध खिलत बनफूला ।
बही बयारि मंद अनुकूला ॥
भानु किरन ऋतुगुन निज त्यागे ।
ता के अंग सुखद ह्वै लागे ॥
नव-पल्लव-अञ्जलि तरु कीन्हे ।
डार झुकाय फूल तेहि दीन्हें ॥
नित नव मृदुल घास उपजाई ।
धरनि तासु हित सेज बनाई ॥
बिना मेघ नभ जलकन डारी ।
तपबन महि की धूरि निवारी ॥
लखि तेहि कुश सेयो यहि भांती ।
मनहुँ दया करि तप दिन राती ॥
करन काज निज तप-श्रम स्वारथ ।
देख्यो सगुन फूल तहँ पारथ ॥
भयो न कछु विस्मित-चित बीरा ।
चित्तवृत्ति राखैं बस धीरा ॥
बहु दिन लगि तप करत कठोरा ।
लहे देखि तेहि विभव अथोरा ॥
घबराहट चित केरि प्रकासी ।
गये इन्द्र पहँ कछु बनवासी ॥
लहि प्रवेस तिन माथ नवावा ।
बनरक्षा कर काज सुनावा ॥
फिरि अबेर अनुचित सो जानी ।
सुरपति सन बोले मृदुवानी ॥

वल्कल-वसन लसत निज अँगा।
तेज-पुञ्ज सोइ मनहुँ पतङ्गा॥
करत घोर तप शैल तुम्हारे।
जग-जीतन लालस जनु धारे॥
तदपि भुजङ्ग सरिस भुजदंडा।
'गहे शत्रु-त्रासन कोदंडा॥
'शुद्ध चरित मुनिगन अधिकाई।
'तिन निज चरितावली जनाई॥
'नव तृन-युत महि सुखद समीरा।
'धूर-दवन हित बरसत नीरा॥
'नभ रह विमल तासु गुन देखी।
'करत प्रकृति जनु भक्ति बिसेखी॥
'छांड़ि वैर मृग बने सनेही।
'गुरुहि शिष्य सम सेवत तेही॥
'फूल काज जब हाथ उठावत।
'रूख आप निज डार झुकावत॥
'नंग पर भयो तासु अधिकारा।
'यदपि कहावत नाथ तुम्हारा॥
'श्रम सन थकै तासु नहिं देहा।
"जय-समर्थ सोइ बिन देहा॥
'सो मुनिभेष जात पुनि पासा।
"लखि प्रभाव उपजै मन त्रासा॥
"है ऋषिसुत कै राजकुमारा।
"कै कोउ दैत्य लीन्ह अवतारा?
"करत यदपि तप तब बन मांहीं।
"तासु रूप जान्यो हम नाहीं॥

"अहै कछुक कारण कै भारी।
"कै जड़ता यह निरी हमारी?
"कही सो क्षमब नाथ सब बानी।
"बुद्धिहीन बनबासिन जानी॥"
सुनि प्रियसुत-तपचरित-बखाना।
बदन-मुख यहि बिध मघवाना॥
प्रगट न कीन्ह हर्ष निज सुरपति।
तजै नीतिपथ नहिं प्रभु की मति॥
जानत यदपि सकल प्रभु भेवा।
बने अज्ञ अवसर लखि देवा॥
परखन हित भक्त-दृढ़ताई।
बोले देवाङ्गना बुलाई॥
"बेधत हियो अस्त्र जग जेते।
"अहैं कठोर थूल सब ते ते॥
"तुम समान सुन्दर सुकुमारा।
"है नहिं सकत जासु प्रतिकारा॥
"दूरहि करत अमोघ निशाना।
"तुम सम कामअस्त्र नहिं आना॥
"मनतम नासि जु लहत मुक्तिफल।
"दाबत रज, जिन केर ज्ञानजल॥
"तुम निज दृगअंजली बनावत।
"बारबार तेहि पियत चुकावत॥
"सुन्दरता छिटकी जग जानी।
"एक ठाँव ब्रह्मा तेहि आनी॥
"कीन्ह तुमहि रचि स्वर्ग सुजोगा।
"आवन चहैं इहाँ कछु लोगा॥

"अब गन्धर्व चतुर लै सङ्गा।
"करहु जाय तेहि कर तप-भङ्गा॥
"चहै जो मुक्ति, चाह सब त्यागे।
"होहि अधीर तुमहिं लखि आगे॥
"जो सुख हेत करत तप घोरा।
"तेहि जोवत ह्वै है श्रम थोरा॥
"चहत होन जो निज रिपु भारी।
"जग के विषय भोगअधिकारी॥
"भव छूटन हित जो तप करहीं।
"ते नहिं बान शरासन धरहीं॥
"कहाँ मुक्तिमारग अति धीरा?
"कहाँ जीवहिंसक धनु तीरा?
"करि न सकै सोइ परम उदारा।
"और मुनिन सम कोप अपारा॥
"अतुल नीर जो जलहिं बचावत।
"तिय-वध-पाप चित्त नहिं लावत॥"
काज सिद्धि करि फिरन पर
आदर-आस दिवाय।
सुरन सौंह आज्ञा तिनहिं
इमि दीन्हीं सुरराय॥
सोभा लही अनूप तन
तेहि अवसर सुरनारि।
बढ़त तेज आदर लहै
जब प्रभु सन अधिकारि॥
दबी कुचन के भार सोइ
करि पुनि प्रभुहिं प्रणाम।

कीन्ह पयान प्रसन्न मन
देवनारि अभिराम ॥
अमल कमल की श्रिय धरे
प्रभु दृग सहस अनूप।
चलत अघाने लखत नहिं
तियन-सलोनो-रूप ॥

॥ इति ॥

सातवाँ सर्ग

अप्सराओं का प्रस्थान

चढ़े अनेक सुरथ गजराजा।
सचिव संग रक्षा के काजा॥
गूँजि बिमान बीच चहुँओरा।
बजत मृदङ्ग होत कल सोरा॥
सुरसुन्दरी कीन्ह प्रस्थाना।
सुनि सोइ धुनि लोगन अनुमाना॥
तेजपुंज पुर सन सुरबाला।
चलन लगीं गिरिदिसि जेहि काला॥
अतिहि चाव सन कछु घबराये।
देखन हेत तिनहि सुर धाये॥
चलत भानु के ऊपर होई।
कीन्हे व्यर्थ छत्र निज सोई॥
लगत बयार सौंह सन आई।*
खिलत कछुक दृग-कमल सुहाई॥
फूलहु सन मृदु तन अभिरामा।
चलत सहत प्रचंड अति घामा॥
गन्धर्वन लखि अचरज माना।
बिधि-प्रपंच विचित्र गति जाना॥
स्रवत दानमद स्वर्ग-मतङ्गा।
सेंदुर-पुते रंगे मुख सङ्गा॥

---

* यह सगुन अच्छा नहीं है। यात्रा सुफल न होगी।

स्वर्ण जँजीर लसत निज देहा।
उपजावत लखि अन सन्देहा॥
ऊपर कछुक भानु-कर परसत।
बिजुली लसत नीर जब बरसत॥
चलत स्वर्ग रथ गज की श्रेनी।
लखि सोइ मनहु दिसा की बेनी॥
दुसह भानुमंडल सन आई।
रुकी कछुक सुरसरि ढिग जाई॥
परसि सीत ह्वै नदी-तरङ्गा।
सुन्दरि-ताप हस्यो लगि अङ्गा॥
किये मत्त अलिकुल तहँ पंकज।
वायु हिलाय तासु निर्मल रज॥
तरत यान की पाँति अपारा।
हय तुरंग सरि जल मथि मारा॥
लही तहाँ सुरसरि-जल शोभा।
गिरत घाट सन निर्झरसोभा॥
चलत अकास-मार्ग रथ धावत।
सुरगेहन की वेदि गिरावत॥
दाबि नीर के बूँद गिरावत।
रहे नीरधर मनहुँ नचावत॥
गज-दन्तन फाटि मेघ-कलापा।
जल बरसाय हस्यो तन-तापा॥
जग-हित माहिं चित्त को धरहीं।
दुःखहु सहि मंगल नित करहीं॥
बन महँ चलत गात गनि कनके।
खुलत वायु बस उठत बसन के॥

तहाँ परत करधनि-मनिझोली।
झीने बसन सरिस सोई होती॥
यद्यपि मेघ मुख-तिलक बिगारा।
हरि सर श्रम सुख दीन्ह अपारा॥
तेहि कर तियन कीन्ह बहु माना।
हनै न एक दोष गुन नाना॥
लहर सरूप रैन सम उज्वल।
गिरितट लसत पयोधर बिन जल॥
पाय तरुनि अँग-मनिपरछाहीं।
प्रगटे इन्द्रधनुष तिन माहीं॥
कहत सुनत निज काज-उपाई।
यहि बिधि सब अकास सन आई॥
सोइ गिरि इन्द्रकील ढिग आये।
नीरद जासु सिखर पर छाये॥
तियमुख सोह कमल की भाँती।
हिलत फेन सम छातन-पाँती॥
करत सोर जनु बजत मृदङ्गा।
लगी सेन गिरि पर जिमि गङ्गा॥
फैले मेघ सेतु सम लागे।
तिन पर रथ समेत सो भागे॥
मुख कछु दबत रास अति खींचे।
झुकि उतरे बल सन हय नींचे॥
लसत मेघ गिरि-तट बन-छोरा।
उतरो नाग-यूथ चहुँ ओरा॥
किये पंख निज सिथिल पहारा।
परो सोह जिमि सिन्धुअपारा॥

नभ बिन रोक टोक हय धावत।
अब सम विषम भूमि पर आवत॥
सरितट रेतहि माँहि खुरन के।
पूरे बने चिन्ह तुरँगन के॥
करैं जहाँ झिरने गिरि-सोरा।
सोइ गिरिभूमि गूँजि अति घोरा॥
करत मोर शङ्का नव घन की।
मुख उठाय धुनि सुनी रथन की॥
गिरि कहुँ ओर शिला नीलम की।
बार बार सरिजल पर चमकी॥
छिटके चहुँ दिसि मनहुँ अकासा।
तिन देख्यो सरि-नीर-विलासा॥
गज-मदगँध शैल पर पावत।
बिगरत सके न रोकि महावत॥
निज करिनिन महँ चित्त लगाये।
सुरसचिवन सोइ हाँकि बढ़ाये॥
चलत सेन मग धूरि उड़ाई।
रथ-चक्रन सन घनी बनाई॥
चलत फैलि सोइ नवजल-रङ्गा।
बढ़ी मनहुँ पावस महँ गङ्गा॥
चमकत रतन रेत महँ जाके।
गये सकल तट पर गङ्गा के॥
भोग जोग देखी तहं धरनी।
सोभा जासु जाय नहिं बरनी॥
घनी दूब जहँ फूल गिराई।
तट रूखन सुचि सेज बनाई॥

कीन्ह इन्द्र-सचिवन तहँ डेरा।
गौरव बढ़ै इन्द्रगिरि केरा॥
महँकत फूल तरुन महँ बन के।
नये पात अति नरम लतन के॥
स्वारथ भये जबहि सुरनारी।
तिनहिं लेन लालस हिय धारी॥
लछिमी सुफल गनिय जग सोई।
पर उपकार सकै करि जोई॥
देख्यो चन्दन रूख बिसाला।
ताकी डार लसत बहु ब्याला॥
निज फुँकार सन पात हिलावत।
बिष-बयार चहुँ दिसि फैलावत॥
रही यदपि सुरनारि मलाना।
चन्दन-रस उद्दीपन जाना॥
स्वामी सरिस नीच जन घेरे।
गनि तेहि गई नारि नहि नेरे॥
भिलम झूल अरु ध्वजा उतारी।
गजन महावत थके बिचारी॥
देन हेत नित कहँ बिश्रामा।
लाये गिरि तरु समथल ठामा॥
प्रलय-बायु बस तरु बन नासे।
लागे सैल सरिस सोइ खासे॥
कछुक सोइ निज श्रमहि मिटाई।
दान-कीच महि पर फैलाई॥
गज जब उठ्यो भँवर सब भागे।
टूटी जँजीर-कड़ी सम लागे॥

तिन महँ एक नाग मदअन्धा ।
सूँघि पार बनगज-मद-गन्धा ॥
तेहि तट झपटि जान सो चाहा ।
रुक्यो देखि सुर-सरित प्रवाहा ॥
अँकुस पैन यदपि सोइ हनेऊ ।
तऊ महावत कहँ नहि गनेऊ ॥
एक गज कछुक झुकाय सरीरा ।
पियो सूँड सन सरि-तट-नीरा ॥
कछु जल बचो बचाइ सेवारा ।
डरत कपोलन पर सोई डारा ॥
रहे चुवत मद गजकट दोऊ ।
टपको मद समान जल सोऊ ॥
जल महँ लहि वन-गज-मदबासा ।
यदपि रह्यो गज अतिहि पियासा ॥
इत उत चितवत होत अधीरा ।
पियो न हिम सम सीतल नीरा ॥
केसर सन मदरेख छिपावत ।
मुखसन कमल सुगन्ध जनावत ॥
क्रीड़ा करत दान बरसावत ।
सुरसरि-विमल-नीर महँकावत ॥
चलत सुरथ हय गज समुदाई ।
जल पर धूरि लाल रँग छाई ॥
हिलत छोर जनु उठत तरंगा ।
गिरत कमल-रज मथत मतङ्गा ॥
फैल्यो तीर देवसरि-वारी ।
रँगी मजीठरङ्ग ज्यों सारी ॥

अगिले पद अरु कंध सँभारत।
परत अगुरु-बन महँ अँग झारत॥
सोहत गज डारत तहँ दाना।
गिरत स्रवत जल ग्रैल समाना॥
बार बार तिन मद बरसाई।
सकल भूमि की धूरि पटाई॥
दबी गँध बन महँ कुसुमन की।
छई बास जनु एल* लतन की॥
गरजत मेघ समान गँभीरा।
सुनत सिंह सोइ होत अधीरा॥
करत चकित चकोर अरु मोरा।
बन ब्याप्यो गज-चिग्घरन सोरा॥
बैठीं मारग की थकी
शीत छाँह सुरनारि।
लटकाए तरुडार सन
भूषन बसन उतारि॥
बीच बीच डेरे तने
सोभा सुखद बढ़ाय।
बन के रूखन में रही
उपवन की छवि छाय॥

॥ इति ॥

---

* इलायची

आठवाँ सर्ग

वनविहार

माया-रचे गेह जहँ नाना ।
ज्वलत रत्न जहँ दीप समाना ॥
इन्द्र-चाप सम रंग सुहाये ।
जहँ तोरन अति रुचिर बनाये ॥
बन-बिहार-लालस हिय धारी ।
सो पुर-प्रीति तजी सुरनारी ॥
चलीं संग सुरपति-सचिवन के ।
द्युति सन करि उज्वल तरु बनके ॥
ज्यों ज्यों बन भीतर सोइ आई ।
घन सँग रही बिज्जु की नाईं ॥
खिले उरोज सकल श्रम गयऊ ।
भूषन-मंजु-शब्द फिरि भयऊ ॥
चलत मन्द महि पर सुकुमारी ।
परम अनन्द लह्यो सुर-नारी ॥
सोहहिं रहे यदपि बहुतेरे ।
झुके फूल सन बिटप घनेरे ॥
आगे बढ़ीं फूल सुन्दर हित ।
कामिनि सदा रहत चंचल-चित ॥
अँगुरी लाल पात सम जानी ।
नखयुत लसत मंजरी मानी ॥
लेप गंध हित अलि तेहि बन के ।
आये पास देव-गनिकन के ॥

कर हिलाय तिन भ्रमर उड़ाये।
लेन अधररस जो ढिग आये॥
भ्रमर लसत निज फूल दिखावत।
पल्लवयुत निज साख हिलावत॥
सोहहि शुचि अशोक की डारा।
निजहि विरावत तियन निहारा॥
"नव पल्लव से हाथ हिलावति।
"क्यों नाहक, भामिनि, दुख पावति॥
"कल्पलता-भ्रम तव पहँ आई।
"नहिं अहै अलि-अवलि लजाई॥"
पिय ढिग जान देखि अभिलाषा।
सखी चतुर एक तिय सन भाषा॥
"चली जाहु जहँ प्रानपिरीते।
"पछितैहो फिरि अवसर बीते॥"
खिले कास पहिरे जनु सारी।
सारस-पांति किंकिनी धारी॥
तीर नितंब समान सुहावन।
सोहत सरित-कुंज सोइ पावन॥
तरु पर गिरत बेग सन धारा।
छिटकत इत उत बूंद अपारा॥
शुचि मुकुता समान अति निर्मल।
प्रिया-उछंग सरिस अति सीतल॥
लागत मनहुँ परम सुख पाई।
शैल-कुंज हँसि परयो ठठाई॥
लसत भृङ्ग जनु अंजन लाये।
खोलि फूल-दृग सीस झुकाये॥

देखी लता रुचिर तेहि बन महँ।
निरखत मनहुँ सप्रेम सखिन कहँ॥
चढ़त पहार-भूमि सुर-बाला।
देख्यो चन्दन बिटप बिशाला॥
कढ़ रगरत बनगज मतवारे।
कीन्हे तने बिपुल सब कारे॥
सौंह झुके लखि यदपि सयानी।
तोरन हित शुचि कुसुम लुभानी॥
तऊँ रहन गन्धर्व निहारे।
लीन्ह फूल तिनहीं के तोरे॥
भ्रम सन लेत सौति कर नामा।
लखि पिय देत फूल एक बामा॥
कह्यो न कछुक समुझि पिय-करनी।
"चारु चरन नख लेखत धरनी॥"
पिय दिसि किये डीठि इक नारी।
ताके बचन सुनत सुकुमारी॥
भूली सुधि सोइ खुलत बसन की।
गहे डार के फूल चुनन की॥
फँसत लता महँ लखि एक बाला।
धरी संभारि सीस पर माला॥
भरे नितंब नीवि जहँ चंचल।
खुलत उरोज हटत कछु अंचल॥
दपत लखत कृस उदर खुलत बलि।
प्रगट दिखाय रुचिर रोमावलि॥
चोटी खुलत केस छिटकावत।
कछुक मंजु निज काँख दिखावत॥

तरु सन फूल-चुनन मिस धरेऊ।
पै निज प्राननाथ-मन हरेऊ॥
तिय-दृग देखि फूलरज छाई।
सक्यो न पिय तेहि फूँकि उड़ाई॥
पल्लव फूल रुचिर तेहि बन के।
भूषण बसन सरीर तियन के॥
बनश्रिय लता विटप तरु त्यागी।
सकल देवगनिकन महँ लागी॥
किये लाल कर पल्लव लीन्हें।
परत पराग पांडु उर कीन्हें॥
तन सुगन्ध लै फूल बढ़ाई।
लही तरुनितन-छवि अधिकाई॥
विचरत विषम भूमि गिरि बन की।
दुखन लगी मृदु जाँघ तियन की॥
समहूँ गैल रही तिन की गति।
अरबरात मानहु मद बस अति॥
करधन-रतन-जोति फैलावत।
शुचि नितम्ब प्रतिबिंब दिखावत॥
श्रम बस भरे जघन दोउ तिनके।
छवि महँ रहे समान पुलिन के॥
खिले सरोज सरिस मन मोहत।
नीवी पास नाभिसर सोहत॥
उरज-भार सन उदर झुकावत।
बीच बीच त्रिबली दिखरावत॥
श्रम बस मुँदे जात नयनन की।
लसत स्वेद कन तरुनि-मुखन की॥

देखि ओस-युत पंकज सी छवि ।
खिलन लगत दल कछुक उवत रवि ॥
विचरत विकट शैल वन के मग ।
आलस भरे परे तिनके पग ॥
लखि सोइ यद्‌पि प्रेम अति गाढ़ा ।
हरिसचिवन-मन कौतुक बाढ़ा ॥
उछरत मीन सरोज हिलाई ।
मनहुँ नयन सन सैन बताई ॥
बिना कीच तट लहर हटावत ।
मनहुँ हाथ सन राह दिखावत ॥
कलहंसन की बोल सुनावत ।
मधुर बोलि जनु तियन बुलावत ॥
जल-विहार हित सचिवन सङ्ग ।
तिन सन कह्यो वधू सम गङ्ग ॥
लगि सीतल तन ताप मिटाई ।
कमल-सुगन्ध सङ्ग निज लाई ॥
चलत लहर बिच मन्द बयारी ।
जल महँ तिय लै गई सँभारी ॥
गति सन तिन कलहंस डुरावा ।
पुलिन समान नितंब दिखावा ॥
बड़े दृगन-युत बदन दिखाई ।
तिन कमलन-मुख-जोति उड़ाई ॥
जल हीलत तट के रूष भागे ।
सरि महँ घुसे सचिवगन आगे ॥
सुरसुन्दरि तिनके पीछे चलि ।
डरत डरत जल माँह गईं हलि ॥

चलत सम्हारि जवन के भारा।
ज्यों गनिकन भीतर पशुधारा॥
सारस-पाँति करत जो भङ्गा।
फैल्यो सरितट बिमल तरङ्गा॥
उर कठोर लागत सखियन के।
हीलत कुचै उरज गनिकन के॥
टूटत लहर चलत कछु तीरा।
भयो रिसाय मलिन जनु नीरा॥
माल हिलाय केस बिखराई।
उर चन्दन सब धोय मिटाई॥
करि अपराध मनहुँ भय व्यापा।
लहर-रूप जल थर थर काँपा॥
देखि सौत जेहि होत अधीरा।
गन्ध-लेप सन दुबौ सरीरा॥
छुटत गुलाल खुलत नखरेखा।
प्रगट्यो तरुनि-सोहाग बिसेखा॥
"कै यह भ्रमर लसत पंकजदल।
"कै यह सखी-नैन दोउ चंचल॥
"कै जल महँ बिखरी अलकावलि।
"कै मँडरात मैान साधे अलि॥
"लिय मुसक्यात दसन-द्युति निकसत।
"केसर खुले कमल के बिकसत॥"
करत कमल बन महँ असनाना।
यहि बिधि सखी सखी कहँ जाना॥
रचि फूलन की माल सँवारी।
सौत सौंह पिय नियगर डारी॥

मिली माल पहिरी सोइ सादर।
बढ़त प्रेम सन गुन-गन आदर॥
रोकन हेत दृगन महँ लाली।
अंजन अवसि लगायो आली॥
शोभा हेत रह्यो सो नाहीं।
नत केहि हित नहात जल माहीं॥
अंजन मिटि लाली दृग छाई।
श्रिय नहिं हरी हरी उजराई॥
फूलहार तिय-सीस सुहाये।
मनहुँ लोभ सन लहर बहाये॥
तिनकी दशा भई अति दीना।
सचिव सरिस अधिकार-विहीना॥
तिलकहीन मुख दृग बिनु अंजन।
कीन्ह ओंठ बिनु रँग करि मंजन॥
घटी न तदपि देह की शोभा।
देखि देखि सचिवन मन लोभा॥
तब जान्यो तिय सुन्दर-रूपा।
आपहि भूषण रह्यो अनूपा॥
प्रीतम-प्रेम-गर्व मन धारत।
भूषन सन निज देह सँवारत॥
सखी न त्यों निज सौत जराई।
ज्यों भीगत नख-छत दिखराई॥
मुख समान पंकज विकसावत।
हिलत हार सम फेन दिखावत॥
रँगत गुलाल रंग सन नीरा।
बनत मनहुँ सोइ गौर सरीरा॥

जल महँ लहर बीच सोइ आई।
लही न अँग-सोभा अधिकाई॥
लागत तरुनि-हाथ तहँ नीरा।
बज्यो मृदंग समान गँभीरा॥
तिय उर लागि दीन्ह जनु ताला।
नाच्यो जल काँपत नहिं काला॥
हँसत तरुनिमुख-छाँह दिखावत।
विकसत कलुक सरोज लजावत॥
लखि यहि भाँति करत सुरनारी।
निजहि परम शोभा-अधिकारी॥
प्रति-उपकार उचित चित चीन्ही।
निज स्वच्छता सुफल करि लीन्ही॥
सरकत मीन जाँघ बिच जानी।
चितयो चकित एक डर मानी॥
पल्लव सम निज हाथ हिलाई।
देख्यो सखिन ताहि घबराई॥
झख उछरत लखि इक भय मानी।
झपटि पीय के गर लपटानी॥
साँचे प्रेम चित्त जो धरहीं।
बनेहु भाव सन तियमन हरहीं॥
जल भीजत चहुँ दिसि सोइ छाये।
फैलि केस तिय बदन छिपाये॥
चहुँ दिसि लसत भ्रमर की पाँती।
भे तिय मुख सरोज की भाँती॥
गहिरे नीर थाह नहिं पाई।
धनि डर बस निज हाथ हिलाई॥

तजि सँकोच सब लाज गलानी।
एक नारि पिय-उर लपटानी॥
पिय कर सन लागत जल तिनके।
हाँफत कँपे उरज तरुनिनके॥
कीन्ह ललित कर विविध विलासा।
निज विलासनी नाम प्रकासा॥
हाथ जोरि तिय-मान निवारी।
तेहि पर पीय फुरहरी डारी॥
नैन मूँदि निज मुख कछु गोई।
हरी सौत मुख की छवि सोई॥
होय काम बस लै कर पानी।
पिय पर डारन चली सयानी॥
पिय पकरत कर कँपत सरीरा।
भई परबस सोइ तरुनि अधीरा॥
सरकत बसन जात खुलि नारा।
सखी सरिस किंकरी सम्हारा॥
छूटत तिलक माथ चलि सङ्गा।
काँपत ओठ धुलत छुटि रङ्गा॥
अंजन छुटत तिरीछहि हेरी।
सोभा लही देह तिनकेरी॥
पिय के पास कँपत सब गाता।
मुँदत तिरीछ नयन-जलजाता॥
हाँफत कछुक करत असनाना।
श्रम कि कामबस नहिं कोउ जाना॥
सौंह सौत पाछे तिय एका।
पाय प्रिया-कर सन जलसेका॥

कीन्ह मान किमि कोउ उपाऊ ।
नहिं मानिन कछु कीन्ह पसाऊ ॥
प्रेमिन-चित उपजे नहिं बाधा ।
उपजि बहुत मोह किये प्रबोधा ॥

द्रवी मन्द मन्दहिं चलत
उर नितम्ब के भार ।
निसरत चाह्यो नीर मन
करि यहि भाँति बिचार ॥
है चंचल सुचि नीर पर
बढ़ि बढ़ि उठति तरंग ।
आगे धायो सरित-जल
जनु मन-भरे उमंग ॥
चकवा चकइन तीर पर
चलि उड़ाइ बिलगाय ।
हिलत कमलवन सरिस सोइ
अँग छबि धरे सुहाय ॥
उठत थोड़ सुरसरित-जल
उर मानिन को मान ।
तारा सँग यामिनि सरिस
सोहीं तहँ छबि बान ॥
तन बसन चन्दन कुन्दन
ओरहि रंग कछुक जनाय सो ।
चहुँ ओर छिटकत रतन कौ
द्युति विमल तमन छिपाय सो ॥

सुरनारि तजत विहार करि
जलसेज की सोभा हरी।
कछु टूटत फैलत कछुक
सिमटन सरिस सोइ लहरें करी॥

॥ इति ॥

नवाँ सर्ग

वन विहार

जल विहार पीछे सुरनारी।
भूषन बसन अंग निज धारी॥
प्रगट कीन्ह चित-चाह बिसेखी।
तिनकी दसा भानु तब देखी॥
तिय-प्रिय करन उचित तिन जाना।
दुरि पयोधि की ओट लुकाना॥
चुन्नी रंग ज्योति रवि धारे।
जात दिसा के एक किनारे॥
दिन-प्रिय रही व्योम महँ कैसी।
डोलत माल रत्न की जैसी॥
मद के प्यासे पुरुष समाना।
करि सरोज कर मधु रवि पाना॥
गिरयो धरनि पर ज्यों मतवारा।
होत लाल मद बस तन सारा॥
कीन्हे लाल रंग निज भेसा।
नयन-ओट जब भयो दिनेसा॥
प्रबल ताप धरती सन भागा।
चक्रवाकतिय के हिय लागा॥
पूरब तजे मूल निज त्यागे।
घना होय पश्चिम दिसि लागे॥
अध-बूड़त रविकर-समुदाई।
भयो दीन सम दुर्गति पाई॥

रैन सिंगार समय दिखरावत।
दूती सरिस उताल मचावत॥
खिरकिन सन अग की सुकुमारी।
लालरंग रविजोति निहारी॥
अरुण मृदुल कर किये मयूखा।
पकरि शैल शिखरन के रूखा॥
धँस्यो अस्तगिरि बन महँ तरनी।
कै समान सागर के धरनी॥
बिन रवि नभ पीयर द्युति छाई।
साँझ मनहु प्रभात-छबि पाई॥
कूजत पंछि बसेरन धावत।
संध्या-रंगन प्रगट जनावत॥
साँझ होत रवि पश्चिम भागा।
लसत लाल बादर अस लागा॥
मनहुँ सरित-पति उठत तरंगा।
जल झलकत मूंगन के संगा॥
कर जोरे निज सीस झुकाये।
रह्यो तेही महँ चित्त लगाये॥
तऊ साँझ सो जनहि बिहाई।
फेर्यो मुँह ज्यों दुष्ट-मिताई॥
प्रात-तेज-डर कतहुँ लुकाना।
ढ़्वत भानु सोइ कछुक ठिकाना॥
मन्द मन्द अब निसरि अंधेरा।
बन उपबन सम तल सब घेरा॥
मिले सकल गाढ़े तम माँहीं।
बड़े छोट निगरे कछु नाहीं॥

चलत मनहुँ नीचे दिननाथा।
लीन्हेउ सकल भुवन निज साथा॥
निसि महँ निज जोड़िन के संगा।
चह्यो न यद्यपि वियोग विहँगा॥
तउँ बिलगाइ गये चक चकई।
काल-नियोग टारि को सकई॥
चकवहि देखि प्रिया सन बोलत।
मिलि नहिं सकत यद्यपि ढिग डोलत॥
निज सरोजमुख तुरत झुकावा।
नलिनी निज मन-खेद जनावा॥
कै रँगे सब रूख पहारा।
कै अकास कहँ धरनि उतारा॥
ऊँच नीच कै महि सम कीन्ही।
कै चहुँ ओर दिसा हरि लीन्ही॥
लखि सरोज बिकास निज त्यागत।
रैन होत कारिख सम लागत॥
पहुँची प्रिय तारन पहँ नभ महँ।
बसन चहै कोउ नहिं आपति जहँ॥
तेहि अवसर मानहुँ तिय-अंगा।
खिली केतकी केसर रंगा॥
चूरन सम करपुंज सुहावा।
पूरब दिशि निशिनाथ चलावा॥
प्राची जात निशापति पासा।
प्रगट कीन्ह निज बदन-बिकासा॥
निज मलीनता सकल मिटाई।
दिसा प्रसाद अनूप जनाई॥

परत जोन्ह मानहुँ मुसकानी।
तिय जनु पिय आवत ढिग जानी॥
चलत ओट सन कछु गिरिवर के।
हिम के रंग किरन हिमकर के॥
परे नील रँग नभ महँ कैसे।
गँगधार सागर महँ जैसे॥
घनी नील के रंग अँधेरी।
लीन्ह अकास चहूँ दिस घेरी॥
ताहि वेग राकेश हटावत।
पूरब सन निज करन बढ़ावत॥
तंडव-अंत मनहुँ त्रिपुरारी।
धरत नाग की खाल उतारी॥
किरन-जाल निज विमल बढ़ाये।
ज्यों ज्यों निकट निशापति आये॥
अंधकार बस मनहुँ दबाने।
दिशा-अन्त जो रहे हेराने॥
हाँफत खुलि निसरे तेहि काला।
जन्तु हटत जनु बोझ विशाला॥
अरुन रंग निज कोटि उठाई।
चहुँ दिसि ससि तम-रासि हटाई॥
ज्यों वराह-तन धरे मुरारी।
धरनि सुवरन-दसन पर धारी॥
करि सिँगार उर केसर लाये।
तरुनि-उरोज सुकवि शशि पाये॥
हुन-घट सम नभ द्युति फैलावत।
पूर्व सिंधु सन निसरत आवत॥

उदय होत ससि हटत अँधेरी।
लखी लोग इमि छवि निसि केरी॥
घूँघट हटत खुलत ज्यों कछु मुख।
होत तिरीछ लाज बस तियरुख॥
नभ नहिं पूरन भयो प्रकासा।
गिरि बन सन न भयो तमनासा॥
दिसा-मुखन न छई उजराई।
छवि अनूप ससि सन निसि पाई॥
भरे आँसु निज दुःख जनावत।
मानिनि तियन लख्यो तेहि आवत॥
अपराधी सम डरत न थोरा।
गयो निशापति नभ की ओरा॥
कर पसारि जब सहित अनन्दा।
तारा-प्रिया-कुचन निज चन्दा॥
लपट्यो तेहि छन जनु अँगरागा।
तेज अरुनरंग निसरन लागा॥
करत निसापति किरन-प्रसारा।
बिनस्यो सकल शैल अँधियारा॥
मथत सिन्धु ज्यों उठत तरंगा।
भय गहन कानन सब भङ्गा॥
बीच बीच निसरत ससिजोती।
चित्रित छाँह तरुन की होती॥
फूल रचे आँगन की नाईं।
कानन भूमि लागि तेहि ठाईं॥
प्रिया-संग भोगत सुख नाना।
चकवाक घामहुँ सुख माना॥

शशिकर ताहि भयो दुखदाई
दुखी चित्त कछु नांहि सुहाई।
कुसुम-पराग सङ्ग निज लावत
चहुँदिसि कुमुद-गंध फैलावत।
सीत पवन बन लख्यो कँपावत
सोवत पंछिन मनहुँ झुलावत।
चाँदी-कलस-रूप निज धारे
चिन्ह सरोज बीच जनु डारे।
भरे किरन जनु नीर सुहावा
रतिपति नहवावन हित लावा।
तेजस्वी कैसेहु जनु होई
बिन सहाय जय लहै न कोई।
अस विचारि विजयी रतिनाथा
ससि-मयूख लीन्हे निज साथा;
यदपि भोग निज निकट विचारी
किये सिँगार रहीं सुरनारी
चह्यो फेरि सोइ करन सिँगारा
बाढ़्यो चित्त उछाह अपारा
प्रियसन्देस यदपि सो पावा
फिरि सन्देस सुनन मन भावा
फूल माल नहिं विरह सुहानी
चन्दन चाह न कछु मन आनी
पिय-संयोग लगैं सब नीके
पिय-विहीन लागैं सब फीके
सखी-वचन कीन्हेसि नहिँ काना
मिस पावन हित करि मदपाना

धीरज छोड़ि मान करि नासा।
गई एक तिय निज पिय पासा॥
कहत सुनत बहु कथा रसीली।
गई पहुँचि पिय पास छबीली॥
जिनकी बुद्धि मनोज बिगारी।
तिनकी चूक होत उपकारी॥
पिय ढिग जात एक सुखबाला।
पुलकित बदन भई तेहि काला॥
खंडित तिलक सहित मुख तासू।
लह्यो चिन्ह-युत-चन्द्र-उजासू॥
"फिरकै सठहिं भले सखि, जाई।
"सखि, पति सन नहि जोग रुखाई"॥
"लाओ फिरि मनाइ तुम तेही"
"कह्यो वचन सुनि सखी सनेही॥
"जो अपराध करैं नित लोगा।
"कबहुँक होत मनावन जोगा॥
"ऐसे को तो नाम न लीजे"
"जनि गरूर इतनो सखि, कीजे"
सुनि यहि भाँति वचन तरुनिन के।
मन अनन्द बाढ्यो कामिन के॥
करि मद्पान मान सब त्यागी।
जब तिय निज पिय के उर लागी॥
तेहि अवसर कछु जात न जाना।
मद के मदन हर्‌यो तिय-माना॥
बहुत द्वार पै रुकी लगाये।
कर पर धरे कपोल सुहाये॥

"सखि जीवन तव नाथ-अधीना
"करै मान कैसे यह दीना" ।
सुनि सुनि बचन प्रीति लखि गाढ़ी
नई प्रीति प्रेमिन-मन बाढ़ी ।
कीन्हें नहुँ अपराध अनेका ।
गयो प्रिया पहँ नायक एका ॥
दुःखित होय पाय अपमाना
कोप अनाय चह्यो सोइ जाना ॥
तेहि अवसर तिय-दृग-आसारा
सखी सरिस निज प्रियहि निवारा ।
गिरत आंसु इर्षा बस जानी
किये मान प्यारी निज मानी ।
कूक पुलकित निज तनहि दिखावा ।
तिय के मन सन्देह मिटावा ॥
कछुक लाज बस लोचन घूमत ।
प्रिया-बदन नायक ज्यों चूमत ॥
रुक्यो न बसन तिया के अङ्गा ।
खसको कछुक लाज के सङ्गा ॥
चूमत करै सु ओंठ तियन के ।
भेंटत नखक्षत लगे पियन के ॥
काम यदपि सुकुमार कहावत ।
संभोगहु क्रूरता जनावत ॥
पल्लव से निज हाथ हिलावत ।
दृग अधखुले सकाम जनावत ॥
गद गद बचन कहत पिय आगे ।
पियहिय काम बाम सम लागे ॥

मद अरु तिय-मुख-सुरस सयाने।
बार बार नहिँ पियत अघाने॥
रुचिर कमलदल इक पर सोहत।
एक मुसुकाय कछुक मन मोहत॥
पिय सनमुख बिनस्यो सब माना।
पियत बारुनी कलह पदाना॥
भई संधि अब मानिन सङ्गा।
धनु पर धर्‌यो न बान अनङ्गा॥
"ह्वै अनुकूल कोप पुनि करहू।
"बिगरत चित पिय के पद परहू॥"
इमि अनेक उपदेस समाना।
तिय बहुवार कीन्ह मद पाना॥
प्रेम सहित पियकर सन प्यारी।
करत पान मदिरा सुरनारी॥
बिनसत लाज लही चतुराई।
कै निज हिये शक्ति तब पाई॥
पहिले आप पान कुछ कीन्हा।
फिर तिन पियो पीय जब दीन्हा॥
पहिले और कछुक रस रहेऊ।
रस औरहि पीछे तिन लहेऊ॥
तियमुख भृकुटि-विलास निहारी।
होइ करन कर समय विचारी॥
प्यालन माँहि कमल-दल सङ्गा।
कर काँपत कछु उठे तरङ्गा॥
दृग जनु खिले कमल तेहि काला।
प्रिया-वदन मानहुँ मद-प्याला॥

तहँ तेहि अवसर पियो अघाई।
पल्लव-ओठन दसन लगाई॥
गुनहुँ सदा आश्रय नित पावत।
निज विशेषता प्रगट जनावत॥
तिमि आसव सोइ प्रिया-जुठारा।
रसिकन तहँ अति मधुर विचारा॥
मनि-चषकन पर पिय-रद-जोती।
लखि तिय-हिय न प्रीति अति होती॥
ओठ-रँग अब छूटन लागा।
कीन्ह प्रतीत नाथ-अनुरागा॥
अधरन सन सब रँग हरि लीन्हा।
कछुक रंग सोइ नयनन दीन्हा॥
तिय-बदनन सुगन्ध सँग पाई।
मदिरा-स्वास विशेष जनाई॥
उलटि पलटि गुन कछुक बढ़ावत।
मदगुन यह प्रभाव प्रगटावत॥
रहे कान लगि तरुनिन के।
नील कमल श्रवनन महँ तिन के॥
व्यर्थहि रह्यो, दशा सोइ देखी।
कमल केर हित करत विशेखी॥
चढ़त मदन मदिरा-रंग सोई।
कीन्हे लाल नारि दृग दोई॥
मिथ्या अधर-रंग करत पान मद।
दिखरावत तउँ पिय-दर्शन-पद॥
मद चाखत ज्यों ज्यों रस बाढ़ा।
चढ़्यो मनहुँ अधरन रंग गाढ़ा॥

लगे कपोलन अरुन छबि धारे।
दोउ दृग लाल भये रतनारे॥
हरस्यो मद फैलत मुख माँहीं।
ज्यों दर्पनी माँहिं परछाहीं॥
किये कोप यद्यपि सुरबाला।
बदन बिगारि रहीं तेहि काला॥
सुन्दरता तउँ तिया-मुखन की।
रही लुभावन निज पिय-मन की॥
मद-रँग तुरत दुराव मिटावा।
तिनहिं पीय-अनुकूल बनावा॥
हटत वस्त्र कछु नाभि दिखावत।
बिन कारन कछु कोप जनावत॥
तजब लाज सोहहिं पुरुषन के।
कहे जात ए दोष तियन के॥
तेहि अवसर सोइ सुगुन बनावा।
तरुनिन केर कलंक मिटावा॥
सखिन सौंह लज्जा सब त्यागी।
एक सुर-तिय पिय के उर लागी॥
मद-प्रेरित तेहि छन तिय जानी।
तिय हित तजब लाज सकुचानी॥
वचन रोकि कछु दृग झपकावत।
उर लावत दोउ करन झुकावत॥
अवसर पाय नसत जनु लाजा।
मद सब कीन्ह लाज के काजा॥
बैठी रही मान कीन्हे तिय।
बढ़त मदन लागी पिय के हिय॥

काज-बिगारनि यदपि कहावति।
मदिरा छिपे भेद प्रगटावति॥
कै मधु प्रगट कीन्ह मधुराई।
कै सुयोग तिय-देह बनाई॥
मद-रंग खिलत सुतनु अभिरामा।
शर-अवसर पायो निज कामा॥
मद वस होत सकल सुधि नासा।
"जनि पिय जाय और तिय पासा॥"
अस संका मन धरे सयानी।
पियो न मद बहु लखि बड़ि हानी॥
जाके प्रेम रहत मन सांचा।
बिन कारनहु रहै हिय कांचा॥
मद मनोज औ निर्मल चन्दा।
देइ देइ इमि तियन अनन्दा॥
चित्त-निवृत्ति लही तरुनी अति।
प्रीतम-संग करत क्रीड़ा-रति॥
यहि बिधि सुरपति के सखा
देवांगना सप्रेम।
हिलि मिलि बिहरि निबाहेऊ
रतिनायक के नेम॥
बीति गई आधी निसा
कह्यो बन्दि जब बैन।
सब जान्यो छोटी भई
बीती बेगहि रैन॥
कछुक सोइ सोइ नींद बस
आलस सकल मिटाय।

जागीं अब सुरतिय सुनत
मागध-बचन सुहाय ॥
रति-प्रीता सब जानि कै
पहुँचत पीय-बियोग ।
पहिलेहु छन बढ़ि कछुक
लगीं करन सुख-भोग ॥
मुँदे जात दोउ नैन लखि
आलस-भरी बिचारि ।
देह दुरावन हेत जनु
डोली मन्द बयारि ॥
कुसुम-माल के गन्ध सँग
रुचिर बारुनी-बास ।
साथ लिये चहुँदिसि करत
भोग-बिलास प्रकास ॥
छीलत पल्लव से अधर
मद महँकत तेहि काल ।
जागत कच्ची नींद सों
नैन होत दोउ लाल ॥
मिटत पत्र-रचना कछुक
बिगरत सकल सिँगार ।
उतरत मद मुख तियन के
सोभा लही अपार ॥
पोंछि जात अँगराग सब
प्रगटावत नख-रेख ।

करत पान सोहत अधर
    लाली लये विसेख ॥
भोर होत पिय-विरह सों
    व्याकुल सुरतिय जानि ।
लपटी रतिथिय तियन-तन
    मानहुं सखी सयानि ॥

॥ इति ॥

Printed by RAMZAN ALI SHAH at the National Press, Allahabad